Paper : BC-201 Business Laws

Revised by : Parveen Khurana

Lesson No : 4

अनुबन्ध की समाप्ति तथा अनुबन्ध के खण्डन के परिणाम
(Termination of Contract and Consequences of Breach of Contract)

अध्याय की रूपरेखा (Index of the Chapter)

1. प्रस्तावना/परिचय (Introduction)

2. अध्याय के उद्देश्य (Objective of Chapter)

3. अनुबन्ध की समाप्ति

 3.1 अनुबन्ध का निष्पादन

  3.1.1 वास्तविक निष्पादन

  3.1.2 प्रस्ताविक निष्पादन

  3.1.3 निष्पादन के प्रस्ताव को अस्वीकार करने का प्रभाव

  3.1.4 किसके द्वारा अनुबन्ध का निष्पादन होना चाहिए।

  3.1.5 निष्पादन के लिये समय तथा स्थान

  3.1.6 प्रतिव्यवहारी वचनों का निष्पादन

  3.1.7 अनुबन्ध जिसमें पारस्परिक वचन स्वतन्त्र है

  3.1.8 भुगतानों का नियोजन

 3.2 पारस्परिक ठहराव द्वारा

 3.3 निष्पादन की संभावना द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति

  3.3.1 अनुबन्ध समाप्त होने की दशा में पक्षकारों के अधिकार

 3.4 अवधि समाप्त होने पर

 3.5 विधि के प्रभाव द्वारा

 3.6 अनुबन्ध खण्डन के लिये उपचार

  3.6.1 पीड़ित पक्षकार को प्राप्त होने वाले अधिकार/उपचार

 3.7 हर्जाने का अर्थ एवं माप

  3.7.1 हर्जाने के प्रकार

  3.7.2 नैराश्य का सिद्धान्त

3.7.3 नैराश्य के सिद्धान्त की सीमाएँ

3.7.4 नैराश्यता संबंधी प्रावधान

3.8 विस्तीर्ण क्षति एवं दंड

3.9 उचित पारिश्रमिक

3.9.1 सिद्धान्त की परिसीमाएँ

3.9.2 ब्याज का भुगतान

3.9.3 उपयुक्त रूप से अनुबन्ध निरस्त करने वाले पक्षकार के अधिकार

4. सारांश

5. प्रस्तावित पुस्तकें

6. नमूने के लिए प्रश्न

1. परिचय/प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक अनुबन्ध पक्षकरों में दायित्व उत्पन्न करता है जिन्हें पक्षकारों द्वारा पूरा किया जाना आवश्यक होता है। अनुबन्ध की समाप्ति का सबसे साधारण एवं प्रभावी तरीका उसमें दिये गये वचनों को पूरा करके माना जाता है। परन्तु इसके अतिरिक्त भी एक अनुबन्ध की समाप्ति हो सकती है। उन अन्य विधियों में मुख्यत: पारस्परिक सहमति द्वारा, निष्पादन की असंभावना द्वारा, निर्धारित अवधि के व्यतीत हो जाने आदि को शामिल किया जाता है। यहाँ अध्याय में इन सभी विधियों को विस्तारपूर्वक बताया गया है।

अनुबन्ध के खण्डन का खर्च अनुबन्ध में दिए गए वचन को पूरा न करना होता है। यदि अनुबन्ध में एक पक्षकार अपने दिये हुए वचन को पूरा नहीं करता तो उसे दोषी पक्षकार तथा जो पक्षकार अनुबन्ध को पूरा करने की इच्छा रखता है उसे पीड़ित पक्षकार कहा जाता है। ऐसी परिस्थिति में पीड़ित पक्षकार को दोषी पक्षकार के विरुद्ध कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जिनका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

2. उद्देश्य (Objective) :

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य पाठकों को अनुबन्ध की समाप्ति की विभिन्न विधियों से परिचित करवाना है। एक अनुबन्ध की समाप्ति की मुख्य विधि इसका वास्तविक निष्पादन होती है। वास्तविक निष्पादन के ढंग की जानकारी तथा नियम यहाँ समझाये गये हैं। इसके अतिरिक्त पाठकों को यह भी जानकारी हो सकेगी कि एक अनुबन्ध इसके अतिरिक्त किन-किन विधियों या परिस्थितियों में समाप्त हुआ माना जाता है। जैसे असंभावना की स्थिति उत्पन्न होने अथवा कानून के कार्यशील होने पर ये सभी परिस्थितियाँ तथा उनके प्रभाव यहाँ पाठकों को समझाने का प्रयास किया गया है।

इसी प्रकार अध्याय के दूसरे भाग में अनुबन्ध के खण्डन के परिणाम की जानकारी प्रदान की गई है। खण्डन का अर्थ तथा उसके दोनों प्रकार पाठकों को बताए गए हैं। अनुबन्ध खण्डन किये जाने पर पीड़ित पक्षकार को दोषी पक्षकार के विरूद्ध क्या-क्या अधिकार मिलते हैं यह भी पाठकों को बताया गया है। खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार दोषी पक्षकार से हर्जाना प्राप्त कर सकता है। हर्जाने का अर्थ, इसके विभिन्न प्रकार तथा उनका अनुमान किस तरह से लगाया जाता है। यह भी पाठक जान पायेंगे। अत: इस अध्याय से पाठक अनुबन्ध की समाप्ति तथा अनुबंध के खण्डन के परिणामों से पूर्ण रूप से परिचित हो पायेंगे।

3. अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge or Termination of Contracts)

अनुबन्ध होने पर वचनदाता तथा वचनग्रहीता दोनों पक्षकारों के कुछ दायित्व हो जाते हैं। जब इन दायित्वों की समाप्ति हो जाती है, तो अनुबन्ध भी समाप्त हो जाता है। अत: पक्षकारों के उत्तरदायित्व से मुक्त होने को ही अनुबन्ध की समाप्ति कहते हैं। पक्षकारों की उत्तरदायित्वों से मुक्ति अर्थात् अनुबन्धों की समाप्ति निम्नांकित ढंगों से हो जाती है –

1. निष्पादन द्वारा (By Performance)
2. पारस्परिक सहमति द्वारा (By Mutual)
3. निष्पादन की असंभव द्वारा (By Supervening impossibility)
4. निर्धारित अवधि के व्यतीत हो जाने पर (By Lapse of Time)
5. किसी विधान के कार्यशील होने पर (By Operation of Law)
6. अनुबन्ध के भंग द्वारा (By Breach of Contract)

3.1 अनुबन्ध का निष्पादन (Performance of Contract) (धारा 37-61) :

अनुबन्ध के निष्पादन से तात्पर्य पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध के दिये गये वचनों को पूरा करने से है। उदाहरण के लिये A, B को अपनी कार 1,20,000 रूपये में बेचने का अनुबन्ध करता है। B 1,20,000 रुपये देकर A से कार प्राप्त कर लेता है। तब ऐसी दशा में दोनों पक्षकारों ने अपने-अपने वचन का निष्पादन कर दिया है। अत: यह अनुबन्ध की समाप्ति या निष्पादन द्वारा कहलायेगी।

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 37 के अनुसार – "जब तक इस अधिनियम या अन्य किसी अधिनियम की व्यवस्थाओं के अधीन निष्पादन से मुक्ति न दे दी गई हो, अनुबन्ध के पक्षकारों को या तो अपने वचनों का निष्पादन करना चाहिये या उसका प्रस्ताव करना चाहिए।"

("The parties to a contract must, either perform or offer to perform, their respective promises, unless such performances is dispensed with or excused under the provision of this act or any other law." - Sec. 37) अत' स्पष्ट है कि अनुबन्ध का निष्पादन दो प्रकार से करते हैं :

(1) वास्तविक निष्पादन (Actual Performance)

(2) प्रस्ताविक निष्पादन (Attempted Performance)

3.1.1 वास्तविक निष्पादन (Actual Performance) – जब अनुबन्ध के हर एक पक्षकार द्वारा अपने वचन को पूरा किया जाता है तो इसे अनुबन्ध का वास्तविक कहते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक पक्षकार द्वारा वास्तविक रूप से अपने-अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर दिया है।

3.1.2 प्रस्ताविक निष्पादन (Actual Performance) – इसमें अनुबन्ध के अन्तर्गत कोई भी पक्षकार वचन का निष्पादन नहीं करता, अपितु वचनों को पूरा करने के लिये प्रस्ताव करता है। निष्पादन के

लिये प्रस्ताव तब तक निष्पादन का रूप नहीं ले सकता, जब तक कि वचनग्रहीता द्वारा वचन निष्पादन के प्रस्ताव को स्वीकार न कर लिया जाये। यह प्रत्येक अनुबन्ध की प्रकृति और बनावट पर निर्भर करता है कि उसके लिये प्रस्ताव किया जाये अथवा वास्तविक निष्पादन किया जाये।

3.1.3 निष्पादन के प्रस्ताव को अस्वीकार करने का प्रभाव (Effects of Refusal to Accept offer of Performance) : (धारा 38)

धारा 38 के अनुसार - जहाँ प्रस्तावक ने वचन पूरा करने का प्रस्ताव किया है और प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ है तो प्रस्तावक वचन को पूरा करने के लिये उत्तरदायी नहीं है तथा अनुबन्ध के अधीन वह अपने अधिकारों को भी नहीं खोता। ऐसे प्रस्ताव में निम्न शर्तें अवश्य पूरी होनी चाहिये।

1. **प्रस्ताव शर्त रहित होना चाहिये (Proposal must be unconditional)** – निष्पादन का प्रस्ताव प्रतिबन्ध मुक्त होना चाहिये। उसमें कोई शर्त नहीं होनी चाहिये।

2. **उचित समय एवं स्थान (Proper Time or Place)** – प्रस्ताव ऐसी परिस्थितियों में किया जाना चाहिये कि वह व्यक्ति जिसको प्रस्ताव किया गया है, निश्चित करने का यथोचित अवसर मिल जाये कि प्रस्तावक अपने वचन को पूरा भाग, जिसको करने के लिये वह अपने वचन द्वारा बाध्य हैं उसी स्थान पर उसी समय पूरा करने के लिये योग्य तथा इच्छुक है। उदाहरण- सुनील, अनिल को अपनी भैंस 5,000 रूपये में बेचने का अनुबन्ध करता है। सुनील रात को 12 बजे अनिल के पास आकर भैस की सुपुर्दगी का प्रस्ताव करता है। अनिल स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं है क्योंकि यह उचित समय पर नहीं किया गया है।

3. **वस्तु की जाँच करने का अवसर मिलना चाहिए (The promisee must have opportunity to see the goods)** – वचनग्रहीता को यह देखने का उचित समय मिलना चाहिये कि प्रस्तुत की गई वस्तु वही वस्तु है जिसको सुपुर्द करने के लिये वचनदाता अपने वचनों द्वारा बाध्य है।

4. **संयुक्त वचनग्रहीताओं में से किसी एक को प्रस्ताव (Proposal to one of several joint promisees)** – संयुक्त वचनग्रहीताओं में से किसी एक को किये गये प्रस्ताव का वही वैधानिक परिणाम होता है जो इन सबको किये गये प्रस्ताव का होता है।

3.1.4 किसके द्वारा अनुबन्ध का निष्पादन होना चाहिए? (To whom contracts must be Performed) (धाराएँ 40-45)

अनुबन्ध के निष्पादन करने के संबंध में एक बहुत ही कठिन प्रश्न उठता है कि पक्षकारों को अपने-अपने वचनों को स्वयं पूरा करना चाहिये या उनकी ओर से कोई दूसरा व्यक्ति भी इसे पूरा कर सकता है।

धारा 40 के अनुसार - "जब पक्षकारों का आशय यह हो कि वचन का निष्पादन स्वयं वचनदाता द्वारा किया जाए, तो ऐसी स्थिति में वचनदाता द्वारा ही वचन का निष्पादन करना चाहिए। अन्य परिस्थितियों में वचनदाता या उसका प्रतिनिधि किसी भी योग्य व्यक्ति को अनुबन्ध के निष्पादन के लिये प्रयुक्त कर सकता है।"

निष्पादन के संबंध में निम्नलिखित नियम है - (धारा 40)

(अ) यदि अनुबन्ध के स्वभाव से यह प्रकट होता है कि पक्षकारों का अभिप्राय यह था कि वचन या निष्पादन स्वयं वचनदाता पर होना चाहिए तो ऐसी दशा में वचनदाता को ही वचनों का निष्पादन करना होगा।

(ब) किसी अनुबन्ध में यदि वचनदाता की विशेष चतुरता एवं व्यक्तिगत योग्यता की आवश्यकता होती है तो यह माना जायेगा कि पक्षकारों का अभिप्राय: केवल वचनदाता द्वारा निष्पादन कराने का था।

(स) अन्य दशाओं में निष्पादन वचनदाता या उसके प्रतिनिधि द्वारा करते हैं।

(द) यदि वचनग्रहीता किसी अन्य व्यक्ति से वचन का निष्पादन स्वीकार कर लेता है तो बाद में उसे वचनदाता के विरूद्ध परिवर्तित नहीं करा सकता।

3.1.5 निष्पादन के लिये समय और स्थान (Time and Place for performance) (धारा 46-50) :

वचन को पूरा करने के लिये समय और स्थान का साधारण नियम यह है कि यदि अनुबन्ध में निष्पादन के समय और स्थान का उल्लेख हो तो पक्षकारों को उसी स्थान और समय पर उसे निष्पादित करना चाहिये किन्तु इस संबंध में उल्लेख न होने पर अनुबन्ध अधिनियम की धारा 46 से लेकर 50 तक की धाराएँ लागू होती है। इन धाराओं में निम्नलिखित नियम हैं -

1. जहाँ वचन का निष्पादन दूसरे पक्षकार को आवेदन के बिना पूरा करना हो एवं उसके लिये कोई समय निश्चित न किया गया हो (Time for performance of promise, where no application is to be made and no time is specified) – जब किसी वचन का निष्पादन किसी दूसरे पक्षकार को आवेदन से करना हो और उसके लिये समय भी निश्चित न हो तो ऐसे अनुबन्ध का निष्पादन उचित समय में किया जायेगा। उचित समय के विषय में कह सकते हैं कि उचित समय का निर्णय परिस्थितियों, व्यापार में प्रचलित रीति-रिवाज इत्यादि पर निर्भर होगा। (धारा 46)

2. जहाँ वचन के निष्पादन के लिये समय तो निश्चित हो परन्तु निष्पादन के लिए आवेदन आवश्यक हो (Time and place for performance where time is specified and no application to be made) – जब किसी वचन का निष्पादन किसी निश्चित तिथि को करना हो और उसके लिये आवेदन न करना हो तो ऐसी दशा में वचनदाता को अपने वचन का निष्पादन व्यापार के सामान्य घण्टों में उस दिन एवं उस स्थान पर निष्पादित करना चाहिये जहाँ अनुबन्ध द्वारा निश्चित किया गया था।

3. **जब वचन के निष्पादन के लिये वचनग्रहीता को आवेदन करना हो (Application for performance on certain day to be at proper time and place)** – जब वचन का निष्पादन किसी निश्चित दिन करना है और वचनग्रहीता के आवेदन के बिना वचन के निष्पादन का उत्तरदायित्व अपने पर न लिया हो तो ऐसी दशा में वचनग्रहीता का कर्त्तव्य है कि वह वचनदाता से उचित समय एवं स्थान, जहाँ पर वचन का निष्पादन करना है, के लिए आवेदन करें। (धारा 48)

4. जब वचन के निष्पादन के लिए न तो आवेदन किया जाना चाहिए और न ही निष्पादन का स्थान निर्धारित किया गया हो (Place for performance of promise, where no application is made and no place fixed for performance) – ऐसी दशा में वचनदाता का कर्त्तव्य है कि वचनग्रहीता को वचन के निष्पादन के लिए स्थान निर्धारित करने के लिये आवेदन करें और वचनग्रहीता द्वारा निर्धारित स्थान पर ही वचन का निष्पादन करें। (धारा 49)

5. **वचन का निष्पादन वचनग्रहीता द्वारा निर्धारित रीति के अनुसार किसी स्थान पर करना (Performance in manner or at time prescribed or sentioned by promises)** – वचन का निष्पादन किसी भी रीति या किसी भी समय किया जाता है जो वचनग्रहीता से निर्धारित की हो।

   उदाहरण– एक मामले में भवीत ने अमित के 20,000 रुपये देने हैं। अमित चाहता है कि भवीत यह रकम उसके बैंक खाते में जमा करा दे। भवीत का बैंक खाता भी उसी बैंक में है। भवीत 20,000 रुपये अमित के खाते में जमा करने बैंक को आदेश देता है। रुपया हस्तांतरण से पहले ही बैंक फेल हो जाता है। तब हुई हानि अमित को सहन करनी होगी। (धारा 50)

3.1.6 प्रतिव्यवहारी वचनों का निष्पादन (Performance or Reciprocal Promisee) :

प्रतिव्यवहारी वचन है जिनमें हर एक पक्ष कोई कार्य एक साथ अथवा कुछ शर्त पर लगाकर दूसरे पक्ष के लिये करने का वचन देता है। ऐसे वचनों के अन्तर्गत अधिकार व उत्तरदायित्व की प्रति व्यवहारिकता होती है।

(There is reciprocity of right and obligations under the promisee)

जैसे - यदि राम व भवीत यह तय करें कि भवीत राम को कुछ सामान देगा और राम सामान की सुपुर्दगी पाने पर उसका मूल्य चुकायेगा तो ऐसे वचन प्रति व्यवहारिक वचन (Reciprocal promises) कहलायेंगे।

प्रतिव्यवहारी वचन को निम्न तीन भागों में विभक्त किया गया है -

(1) अनुबन्ध जिसमें पारस्परिक वचनों का निष्पादन एक साथ होता है (Mutual and concurrent Promises) – ऐसे अनुबन्ध में पक्षकारों को अपने वजन का निष्पादन एक साथ करना होता है। ऐसे अनुबन्ध में किसी भी वचनदाता को अपना वचन उस समय तक पूरा करने की आवश्यकता नहीं है जब तक वचनग्रहीता अपने पारस्परिक वचन को पूरा करने के लिये तत्पर एवं इच्छुक न हो। (धारा 51)

उदाहरण – अ और ब के बी अनुबन्ध होता है कि निश्चित तिथि पर ब को गेहूँ प्रदान करेगा तथा ब अ को 400 रुपये प्रति बोरी के दर से मूल्य भुगतान करेगा। जब तक मूल्य भुगतान करने के लिये तत्पर एवं इच्छुक न हो तब तक अ को गेहूँ सुपुर्द करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार ये जब तक 'अ' गेहूँ सुपुर्द करने के लिये तत्पर एवं इच्छुक न हो तो तब तक 'ब' को मूल्य भुगतान करने की आवश्यकता नहीं है।

(अ) ऐसे अनुबन्ध में जबकि वह क्रम जिसमें पारस्परिक वचन निष्पादित किये जाते हैं, अनुबन्ध द्वारा स्पष्ट रूप से नियम है, तो वह ये से निष्पादित किये जायेंगे और यदि क्रम अनुबन्ध द्वारा स्पष्ट रूप से नियम नहीं है तो वे उस क्रम से निष्पादित किये जायेंगे जो व्यवहार के स्वभाव के अनुसार आवश्यक है। (धारा 52)

उदाहरण – क, ख से अनुबन्ध करता है कि क, ख का एक चित्र निश्चित मूल्य पर बनायेगा। क को अपना वचन ख द्वारा मूल्य भुगतान करने के वचन से पहले निष्पादित करना होगा।

(ब) ऐसे अनुबन्ध जिसमें एक पक्षकार, दूसरे पक्षकार को अपना वचन निष्पादित करने से रोकता है तो इस प्रकार रोके गए पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय हो जाते हैं तथा अनुबन्ध का निष्पादन न होने पर फलस्वरूप जो क्षति होती है उसकी पूर्ति वह दूसरे पक्षकार से करने का अधिकारी है। (धारा 53)।

उदाहरण– अ, ब से अनुबन्ध करता है कि अ, ब का एक चित्र निश्चित मूल्य पर बनायेगा। अ वह कार्य तत्पर करना चाहता है पर ब ऐसा करने से रोकता है। यह अनुबन्ध अ की इच्छा पर व्यर्थ है और यदि ब अनुबन्ध निरस्त करता है तो अ, ब से क्षति की पूर्ति कराने का अधिकारी है।

(स) ऐसे अनुबन्ध में यदि वचन को पहले निष्पादित करने के लिये उत्तरदायी पक्षकार अपने वचन का निष्पादन करने में असफल रहता है तो ऐसा वचनदाता पारस्परिक वचन के निष्पादन की माँग नहीं कर सकता तथा दूसरे पक्षकार को ऐसी क्षति की पूर्ति करेगा जो उस अनुबन्ध का निष्पादन न होने की स्थिति में उठानी पड़े।

उदाहरण– अ, ब को 100 क्विंटल तेल 1500 रूपये प्रति क्विंटल की दर से सुपुर्द करने का अनुबन्ध करता है। सुपुर्द किये तेल का एक माह उपरान्त भुगतान किया जायेगा। अ अपने वचन का निष्पादन नहीं करता तो ब भुगतान का वचन पूरा करने के लिये बाध्य नहीं है। ब अपनी क्षतिपूर्ति अ से कर सकता है।

3.1.7 अनुबन्ध जिसमें पारस्परिक वचन स्वतन्त्र है (Mutual and Independent Promises) : ऐसे वचन, जिसमें प्रत्येक पक्षकार को अपने-अपने वचन को स्वतन्त्र रूप से निष्पादित करना चाहिये और कोई भी पक्षकार यह नहीं कह सकता कि उसने अपने वचन का निष्पादन इसलिये नहीं किया कि दूसरे अपने वचन का निष्पादन नहीं करते। प्रत्येक को अपने वचन का निष्पादन दूसरे की प्रतीक्षा किए बिना कर देना चाहिए और यदि दूसरा अपने वचन का निष्पादन नहीं करता तो हानिपूर्ति के लिये वह दायी होगा।

उदाहरण - अ, ब को एक पुस्तक जिसकी कीमत 12.50 रूपये है, 10 अप्रैल को देगा तथा ब, अ को पुस्तक की सुपुर्दगी 25 मई को करेगा। इस अनुबन्ध में अ द्वारा मूल्य भुगतान किया जाना तथा ब द्वारा माल की सुपुर्दगी किये जाने से स्वतन्त्र है। यदि अ 10 अप्रैल को मूल्य का भुगतान नहीं करता तो भी ब 25 मई को पुस्तक की सुपुर्दगी देने के लिये बाध्य है।

3.1.8 भुगतानों का नियोजन (Appropriation of Payments) (धारा 59-61) :

जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से एक से अधिक ऋण लेता है तो उसे कई ऋणों का भुगतान करना पड़ता है। ऐसे हालात में जब वह एक भुगतान करता है जो कि सभी ऋणों के भुगतान के लिये पर्याप्त नहीं होता, तो यह प्रश्न पैदा होता है कि भुगतान को किस ऋण के भुगतान में स्वीकार किया जाये। ऐसी दशा में भुगतान के नियोजन की समस्या उठ खड़ी होती है। इस समस्या का हल धाराएँ 59, 60 और 61 करती है।

(1) ऋणी की नियोजन के लिये स्पष्ट या गर्भित सूचना (धारा 59) - जब किसी ऋण को किसी दूसरे व्यक्ति के लिये पृथक-पृथक कई ऋण देने है और ऋणी स्पष्ट सूचना के साथ किसी एक विशेष ऋण का भुगतान करता है तो ऋणदाता को चाहिये कि धन को स्वीकार कर लेने पर उस विशेष ऋण के संबंध में ही धन का नियोजन करें, लेकिन यदि ऋणी की स्पष्ट सूचना दिये बिना हालात से पता लगता है कि भुगतान किसी विशेष ऋण के संबंध में किया गया है तो ऐसी दशा में ऋणदाता को उस विशेष ऋण के संबंध में ही धन का नियोजन करना चाहिए।

उदाहरण– (i) अ अन्य ऋणी के साथ ब को 5000 रूपये का ऋणी एक ऋण-पत्र द्वारा भी है जो कि पहली जून को देय है। अ पर ब का इतनी ही राशि का कोई अन्य ऋण नहीं है। पहली जून को अ, ब को 5000 रूपये देता है। इस भुगतान का नियोजन ऋण पत्र के भुगतान का नियोजन ऋण के भुगतान के लिये ही माना जायेगा।

(ii) अ अन्य ऋणों के साथ ब को 967 रूपये का ऋणी है। ब, अ को एक पत्र लिखता है तथा उक्त ऋण का भुगतान करने की मांग करता है, अ, ब को 967 रूपये भेजता है। इस भुगतान का उपयोग उस प्रश्न के लिये करना चाहिये जिसकी ब ने मांग की थी।

(iii) अ, ब को दो ऋणों 500 रु. तथा 10,000 रूपये का देनदार है। ब पत्र द्वारा अ से 10,000 रू. ऋण के भुगतान की मांग करता है अ उसे 5,000 रूपये भेज देता है और यह सूचित नहीं करता कि यह रकम 10,000 रूपये के ऋण के संबंध में प्रयोग की जानी है। इस दशा में ब को इस 5000 रूपये की रकम का नियोजन 10,000 रूपये का ऋण के संबंध में करना चाहिए।

(2) जहाँ ऋणी ऐसी स्पष्ट सूचना नहीं देता कि उसने भुगतान किसी विशेष ऋण के संबंध में किया है- ऐसे हालात में जब इसके अलावा कोई ऐसी परिस्थितियाँ भी नहीं है जिससे यह मालूम हो सके कि यह किसी विशेष ऋण के संबंध में भुगतान किया गया है तो ऋणदाता भुगतान को अपनी इच्छानुसार किसी भी वैधानिक ऋण के भुगतान के लिये नियोजित कर सकता है जो वास्तव में, ऋणी द्वारा उसे चुकाया जाना है चाहे उसका प्राप्त करना प्रचलित 'लिमिटेशन अधिनियम' के अनुसार भले ही मना हो या नहीं।

(3) वहाँ कोई भी पक्षकार भुगतान का नियोजन नहीं करता है - ऐसी परिस्थितियों के किसी भुगतान का उपयोग, ऋणों के भुगतान के संबंध में समय के क्रम के अनुसार किया जायेगा, चाहे वह विवाद के लिमिटेशन के संबंध में प्रचलित किसी राजनियम द्वारा मना है अथवा नहीं। यदि ऋण समकालीन है (अर्थात् उसका भुगतान एक ही दिन किया जाता है) तो भुगतान का उपयोग ऋण के लिये आनुपातिक रूप में किया जायेगा।

उदाहरण– अ को ब के लिये कुछ ऋण इस प्रकार चुकाने हैं।

ऋणी	**ऋणदाता**	**विशेषताएँ**
अ	ब	5,000 रूपये यह ऋण अवधि वर्जित है।
अ	ब	10,000 रूपये यह ऋण 20 सितम्बर 1995 को चुकाना है।
अ	ब	5,000 रूपये यह ऋण 27 सितम्बर 1995 को चुकाना है।
अ	ब	5,000 रूपये यह ऋण 30 सितम्बर 1995 को चुकाना है।

5 सितम्बर 1995 को अ, ब के पास 5,000 रूपये भेजता है। यह ऐसी कोई सूचना नहीं देता कि भुगतान किसी विशेष ऋण के लिये है। 5 सितम्बर सन् 1995 को 5,000 रूपये की कोई भी रकम ब को अ से नहीं मिलनी हैं प्रश्न यह है कि यह रकम किस ऋण के संबंध में मानी जायेगी। उपयुक्त नियम के अनुसार 5,000 रूपये का यह भुगतान 'अवधि वर्जित' ऋण के संबंध में माना जायेगा।

मिला बना फोक्स (1839) के मामले में एक पक्षकार ने दूसरे पक्षकार से 100 पौंड ऋण लिया जो अवधि वर्जित हो गया था। इसके अतिरिक्त उसने 150 पौण्ड का एक और ऋण भी लिया था जो अवधि–वर्जित नहीं था। ऋणी के ऋणदाता को 15 पौण्ड का भुगतान किया लेकिन भुगतान किस ऋण के लिये प्रयोग में लाया जाए इस ऋणी ने नहीं बताया। ऋणदाता द्वारा 250 पौंड के लिये वाद प्रस्तुत करने पर ऋणी ने 100 पौंड के ऋण को अवधि वर्जित बताया तथा 150 पौण्ड के लिये 15 पौण्ड कम करने की मांग की जिसका भुगतान वह कर चुका था। न्यायालय ने निर्णय दिया कि चूंकि ऋणी ने 15 पौण्ड के भुगतान का प्रयोग किया ऋण के लिये किया जाए इस विषय में कुछ नहीं बताया है। अत: ऋणदाता उसे अवधि वर्जित ऋण के भुगतान में प्रयोग कर सकता था। ऋणदाता को 150 पौण्ड पाने का अधिकार था।

जहाँ दूसरा पक्षकार यह बताए बिना भुगतान करता है कि भुगतान ब्याज या मूलधन के संबंध में है, तो वह भुगतान पहले ब्याज के हिसाब में प्रयोग किया जायेगा और इसके बाद कुछ बचे रहने पर मूलधन के हिसाब में प्रयोग किया जायेगा।

संक्षेप में, भुगतानों को अपनाने के नियम निम्नलिखित हैं -

(क) ऋणी को भुगतान करते समय, भुगतान के प्रयोग की विधि बताने का अधिकारी होता है।

(ख) ऋणी द्वारा भुगतान के प्रयोग की विधि न बताने पर ऋणदाता को अपनी इच्छानुसार किसी भी वैधानिक ऋणी के भुगतान में भुगतान की रकम का प्रयोग करने का अधिकार है।

(ग) ऋणी और ऋणदाता की गलती पर कानून के अनुसार भुगतान का प्रयोग किया जाता है।

3.2 पारस्परिक ठहराव द्वारा (By Mutual Agreement) :

अनुबन्ध की समाप्ति पक्षकारों की सहमति से भी हो सकती है। यह सहमति कई ढंग से हो सकती है। जो इस प्रकार है -

(A) नवकरण द्वारा (By Novation) – जब दोनों पक्षकार आपसी सहमति से पुराने अनुबन्ध के स्थान पर नये अनुबन्ध को निर्माण कर लेते हैं तो इसे अनुबन्ध का नवकरण कहते हैं। नवकरण पुराने अनुबन्ध

का स्थान ले लेता है। यह उन्हीं पक्षकारों में भी या अन्य पक्षकारों में भी हो सकता है। उदाहरण के लिये- कंवल ने पंकज का कुछ रूपया देना है। कंवल, पंकज, राम में यह ठहराव हो जाता है कि पंकज के स्थान पर राम को ऋणदाता माना जायेगा। इस अनुबन्ध से कंवल का ऋण समाप्त हो जाता है और राम के प्रति नया ऋण शुरू हो जाता है। इसी प्रकार कंवल ने पंकज का 60,000 रूपया देना है। कंवल 60,000 के स्थान पर अपनी 45,000 रूपये की भूमि बन्धक के रूप में रख देता है। इससे पुराना अनुबन्ध समाप्त होकर नया अनुबन्ध शुरू हो जायेगा।

(B) परिवर्तन द्वारा (By Alteration) – यहाँ परिवर्तन का अर्थ यह है कि पुराने अनुबन्ध के स्थान पर कुछ परिवर्तन की शर्तों के साथ नये अनुबन्ध की प्रतिस्थापना करना। शर्तों में परिवर्तन समय अथवा स्थान आदि के संबंध में हो सकता है। उदाहरण- राम, श्याम को 10 मोहरें 1,000 रूपये प्रति मोहर का दर से चार महीने में देने का वचन देता है। बाद में राम और श्याम इस अनुबन्ध में बदलाव करते हैं और अब राम श्याम को 8 मोहरें पाँच महीने में देने का वचन देता है। इस प्रकार नया अनुबन्ध, पुराने अनुबन्ध को समाप्त कर देता है।

(C) छुटकारा अथवा त्याग (Remission or walver) – अनुबन्ध के पक्षकार पारस्परिक सहमति द्वारा मूल अनुबंध को रद्द करते हैं। ऐसा करने पर अनुबन्ध किसी भी पार्टी पर लागू नहीं होता। यह स्पष्ट ठहराव द्वारा या पक्षकारों के आचरण द्वारा सूचित हो सकता है। दोनों पक्षों द्वारा अनुबन्ध को समय पर पूरा न करना, अनुबन्ध को रद्द करने का प्रमाण है। (धारा 62)

जब एक ही प्रकार को अनुबन्ध के वचन को पूरा करना बाकी हो तो दूसरा पक्षकार अपने अधिकार का त्याग कर सकता है। (धारा 63)

(D) आश्वासन एवं संतुष्टि द्वारा (By Accord and Satisfaction) – जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकारों के बीच मूल अनुबंध के निष्पादन से छुटकारा पाने के लिये कोई दूसरा अनुबन्ध किसी दूसरे कार्य को करने के लिये किया जाता है और वचनदाता ऐसे दूसरे कार्य को पूरा कर देते हैं तो पहला अनुबन्ध आश्वासन एवं संतुष्टि द्वारा समाप्त हुआ माना जायेगा।

उदाहरण– चंचल, गोल्डी का 20,000 रूपये का ऋणी है और यह बबीता, मंगला आदि का ऋणी है। यहाँ यदि चंचल यह तय करता है कि वह उन सबकी मांग में केवल एक रूपये में आठ आने चुकायेगा तो यहाँ गोल्डी को यदि 10,000 रूपये चुका दिए जायें तो वहाँ एक रूपये में आठ आने तो आश्वासन है तथा शेष 10,000 रूपये चुकाना उसकी संतुष्टि है।

(E) छुटकारे द्वारा (By Recission) – अनुबन्ध के छुटकारे से तात्पर्य पक्षकारों द्वारा अपने-अपने अधिकारों के परित्याग से है। इससे मूल अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं रहती। यह निम्न प्रकार से किया जाता है।

(1) पारस्परिक सहमति द्वारा

(2) पीड़ित पक्षकार द्वारा

(3) ऐसे पक्षकार द्वारा जिसने सहमति स्वतन्त्रतापूर्वक न दी हो।

उदाहरण– A एक खाद उत्पादक है। B उससे 100 बोरी खाद खरीदने का अनुबन्ध करता है। उत्पादन न होने से A 100 बोरी खाद B को देने में असमर्थता प्रकट करता है। इसी बीच B को 100 बोरी खाद की आवश्यकता नहीं पड़ती। तब दोनों पक्षकार पारस्परिक सहमति से अनुबन्ध से छुटकारा पा सकते हैं।

3.3 निष्पादन की असंभावना द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge by Impossibility of Performance)

धारा 56 के अनुसार, असंभव कार्य को करने के ठहराव व्यर्थ होते हैं। राजनियम उसको कोई मान्यता नहीं देता जो असंभव है। (Lex non cogil of impossibilia) तथा जो असंभव है वह कोई उत्तरदायित्व उत्पन्न नहीं करता है। (Impossibilium nulla obligationest.)

अनुबन्ध के निष्पादन की असंभवता निम्न तीन प्रकार से हो सकती है –

(i) ऐसी असंभवता जिनका अनुबन्ध के पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय ज्ञान न हो।

(ii) ऐसी असंभवता जिसका अनुबन्ध के पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय ज्ञान रहा हो।

(iii) ऐसी असंभवता जो अनुबन्ध होने के बाद उत्पन्न हुइ हो।

ऐसा कोई भी अनुबन्ध जो ठहराव के बाद असंभव हो जाता है, व्यर्थ है। आकस्मिक असंभवता का तात्पर्य अनुबन्ध होने के पश्चात् उत्पन्न असंभवता से है। आकस्मिक असंभवता निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न हो सकती है।

1. **राजनियम में परिवर्तन (Change of Law)** – यदि अनुबन्ध करने के बाद किसी प्रचलित नियम में कोई परिवर्तन हो जाने के कारण अनुबन्ध का निष्पादन असभव हो जाए तो अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा और वचनदाता अपने वचन को पूरा करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। अर्थात् यह निष्पादन न होने के कारण वचनग्रहीता को हुई हानि के लिये उत्तरदायी नहीं है।

2. **युद्ध छिड़ने के कारण असंभवता (Declaration of War)** – किसी भी अनुबन्ध का पालन, अनुबन्ध के पक्षकारों की सरकारों के बीच लड़ाई छिड़ने के कारण असंभव हो जाता है।

   उदाहरण – बैक लाईन लिमिटेड बनाम केपेल एण्ड कंपनी के विवाद में लड़ाई छिड़ने के बाद सरकार द्वारा जहाज को भाड़े पर लेने के कार, अनुबन्ध का पालन असंभव घोषित किया गया।

3. **अनुबन्ध की विषय-वस्तु के नष्ट होने के कारण असंभव (Destruction of Subject-matter)**– टेलर बनाम काल्डवेल के विवाद में कुछ निर्धारित तिथियों पर संगीत कार्यक्रम (आयोजित) किये जाने पर हाल किराये पर देने का वचन दिया गया था किन्तु कार्यक्रम आयोजित होने से पहले ही अनुबन्ध की विषय-वस्तु हाल के जलकर भस्म होने पर न्यायालय ने अनुबन्ध के पालन को असंभव बताया।

4. **किसी संबंधित घटना का घटित न होना (Non occurrence of an Event)** – जब अनुबन्ध का निष्पादन किसी विशेष घटना के घटित होने पर आधारित हो और ऐसी घटना घटित न हो तो अनुबन्ध का निष्पादन असंभव हो जायेगा। अर्थात् ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ हुआ माना जायेगा।

5. **व्यक्तिगत असमर्थता या मृत्यु (Personal Incapacity or Death)** – जब अनुबन्ध का निष्पादन किसी एक पक्षकार की स्वयं योग्यता पर आधारित हो किन्तु किसी कारण वश वह उस अनुबन्ध को पूरा करने के लिये असमर्थ हो जाये या मर जाये तो उसकी असमर्थता या मृत्यु के कारण अनुबन्ध समाप्त हुआ माना जायेगा। उदाहरण अ एक दुकान में 5 महीने तक कार्य करने के लिये मालिक से अनुबन्ध करता है। अनुबन्ध काल में अ बीमार रहने के कारण काम पर जा नहीं पाता। तब ऐसे दिनों में अ और दुकान मालिक के बीच अनुबन्ध व्यर्थ माना जायेगा।

3.3.1 अनुबन्ध समाप्त होने की दशा में पक्षकारों के अधिकार (Rights of parties in case of discharge) :

धारा 56 के अनुसार, अकस्मात् असंभवता के कारण अनुबन्ध कार्य व्यर्थ हो जाता है और ऐसी दशा में यदि पक्षकारों ने अनुबन्ध के अधीन कोई लाभ प्राप्त कर लिया है तो धारा 65 के अनुसार वह उस लाभ को दूसरे पक्षकार को लौटाने के लिये बाध्य है।

उदाहरण- अ, ब से कोई वैध कार्य करने के लिये 2000 रुपये एडवांस लेता है। लेकिन बीमारी के कारण से अ कार्य नहीं कर पाता। अब अ एडवांस लिये 2000 रुपये वापिस करने के लिये बाध्य है।

इसके अतिरिक्त जबकि वचनदाता यह जानता था या उचित कोशिश से जान सकता था और वचनग्रहीता नहीं जानता था कि वह कार्य जिसके लिए वचन दिया गया था अवैध या असंभव था तो वचनदाता को वचनग्रहीता की क्षति-पूर्ति करनी होगी। उदाहरण के लिये अ जिसकी शादी ख के साथ पहले ही हो चुकी है। क के साथ शादी करने का अनुबन्ध करता है और यदि कानून के अनुसार एक साथ एक से अधिक शादी करना वर्जित है। अ को क की क्षतिपूर्ति करनी होगी जो कि उसको अपने वचन के निष्पादन न करने के कारण पहुँची हो।

3.4 अवधि समाप्त होने पर (By Lapse of Time)

यदि अनुबन्ध का निष्पादन एक निश्चित अवधि के अन्दर किया जाता है तो प्रत्येक पक्षकार को अपने वचन का निष्पादन उस अवधि में कर देना चाहिए। निश्चित अवधि बीतने पर अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। भारतीय लिमिटेशन अधिनियम द्वारा भी पत्रकारों को अपने अधिकार राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय करने की अवधि निश्चित होती है। इसी निश्चित अवधि में पक्षकार अपने अधिकारों को प्रवर्तनीय करा सकते हैं अन्यथा अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

3.5 विधि के प्रभाव द्वारा (By Operation of Law) :

धारा 37 के अनुसार "यदि इस अधिनियम की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत अथवा किसी अन्य विधि के प्रभाव से अनुबन्ध का निष्पादन त्याग या मुक्त कर दिया गया है तो पक्षकारों को निष्पादन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

तीन दशाओं में अनुबन्ध अन्य विधि जैसे कानून के प्रभाव से समाप्त हो जाते हैं -

(अ) विलय द्वारा (Merger) – जब उच्च श्रेणी का कोई अनुबन्ध नीची श्रेणी के मूल अनुबन्ध की जगह पर स्वीकार किया जाता है तो उसको विलय कहते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि अ, ब से एक दुकान 2,000 रुपये प्रति माह किराये पर लेने का अनुबंध करता है और वही दुकान अ, ब से खरीद लेता है तो पहला किराएदारी का अनुबन्ध खत्म हुआ माना जायेगा।

(ब) दिवालियापन से (Insolvency) – जब कोई व्यक्ति दिवालिया घोषित कर दिया जाता है, तो यह अपने समस्त अनुबन्धों के दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(स) अनाधिकृत परिवर्तन द्वारा (Unauthorised Alteration) – किसी दस्तावेज जैसे चौक, बिल, हुण्डी आदि की विषय-वस्तु में अनाधिकृत परिवर्तन कर देने पर अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। उदाहरण- यदि किसी चैक की तिथि या रकम में बिना जारीकर्त्ता की सहमति से परिवर्तन करने पर अनुबन्ध की समाप्ति हो जाती है।

खण्डन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति (By Breach of Contract) – पक्षकार जब अपना वचन पूरा नहीं करता तो अनुबन्ध भंग माना जाता है। अनुबन्ध भंग के दो प्रकार होते हैं। (1) वास्तविक भंग (Actual Breach) (2) रचनात्मक भंग (Anticipatory Breach)।

(i) वास्तविक भंग (Actual Breach) – यह भंग निष्पादन के निश्चित समय पर या निष्पादन करते समय होता है। अनुबन्ध के निष्पादन के लिये निर्दिष्ट समय पर पक्षकार का निष्पादन न करना अथवा करने से मना करना अनुबन्ध का वास्तविक भंग कहलाता है।

(ii) रचनात्मक भंग (Anticipatory Breach) – जब वचनदाता वचनग्रहीता को निष्पादन की उचित तिथि से पहले ही यह सूचित कर दे कि वह अपने वचन को निश्चित तिथि को पूरा नहीं कर सकेगा तो उसकी अनुबन्ध का उचित समय से पहले भंग करना कहेंगे। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो वचनग्रहीता को कुछ अधिकार मिल जाते हैं, जैसे–

1. वह अनुबन्ध का समाप्त करना चुन ले और उसका अन्त कर दे और इससे जो हानि हुई हो उसके लिए वह वचनदाता के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर दे।
2. वह अनुबन्ध को समाप्त न करना चाहे और उसे अब भी चालू मान ले और निष्पादन की सही तिथि का इन्तजार करे और जब यदि उचित तिथि पर वचनदाता अपने वचन को पूरा नहीं करता तो उसके विरूद्ध क्षतिपूर्ति के लिये वाद प्रस्तुत कर दे।

यदि वचनग्रहीता उपर्युक्त बातों में से दूसरी बात चुनता है तो ऐसी दशा में अनुबन्ध दोनों के लाभ के लिये चालू रहता है। तो यहाँ ऐसी स्थिति में अनुबन्ध का उचित तिथि से पहले भंग हुआ नहीं माना जायेगा।

उदाहरण – अ, ब को अपना मकान 1,50,000 रुपये में बेचने का ठहराव करता है। यह निश्चित तिथि पर अ मकान बेचने से मना करे तो यह ठहराव का वास्तविक खण्डन होगा और यदि मकान न बेचने का अभिप्राय अन्तिम तिथि से पहले ही प्रस्तुत कर दे तो यह रचनात्मक खण्डन होगा।

अतः यह महत्वपूर्ण है कि किसी पक्षकार द्वारा अनुबन्ध का खण्डन करने से दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध अंत करने का अधिकार ही नहीं मिल जाता बल्कि साथ ही साथ उसे अपने 'अधिकारों की प्राप्ति' का अधिकार मिल जाता है।

3.6 अनुबन्ध खण्डन के लिये उपचार (Remedies for Breach of Contract) :

दो पक्षकार परस्पर अनुबन्ध करते हैं जब वे अपने–अपने दायित्व को पूरा कर देते हैं तो अनुबन्ध निष्पादित हुआ कहा जाता है और अनुबन्ध का अन्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य रीतियाँ भी हैं। जिनमें अनुबन्ध का अन्त हो जाता है। जब निष्पादन द्वारा अथवा किसी अन्य रीति से अनुबन्ध का अन्त नहीं होता, परन्तु पक्षकार अपने दायित्वों को पूरा नहीं करते तो यह अनुबन्ध का खण्डन कहा जाता है। जब अनुबन्ध का एक पक्षकार खण्डन करता है, तो दूसरे पक्षकार को उसके विरुद्ध कुछ उपचार प्राप्त हो जाते हैं। अनुबन्ध खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार की निम्नलिखित उपचार प्राप्त हैं –

3.6.1 पीड़ित पक्षकार को प्राप्त होने वाले उपचार

(1) हर्जाने का अधिकार (Claim for Demages) – संविदे के खण्डन से किसी एक पक्षकार को हानि पहुँच सकती है। जिस पक्षकार को हानि पहुँची है (दूसरे पक्षकार द्वारा खण्डन करने से) वह उस हानि को वसूली करने का अधिकारी है। क्षतिपूर्ति का अभिप्रायः वित्तीय क्षतिपूर्ति से है। अर्थात् पीड़ित पक्षकार को उस सविंदे के कारण हुई हानि दे देना है।

उदाहरणार्थ – 'अ', 'ब' एक मशीन देने के लिये संविदा करता है। 'ब' उसे मशीन से संबंधित उत्पादन हेतु अन्य सामान खरीद लाता है। परन्तु बाद में 'अ' मशीन के विक्रय को मना कर देता है। इस दशा में 'ब' को 'अ' से क्षतिपूर्ति का अधिकार है।

(2) निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार (Claim for Specific Performance) – जब एक पक्षकार को संविदा के खण्डित होने से हानि हो तो पीड़ित पक्षकार निर्दिष्ट निष्पादन के लिये वाद प्रस्तुत करते हैं। व्यक्तिगत सेवा संबंधी संविदों में विशिष्ट निष्पादन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। उदाहरणार्थ- 'अ' 'ब' से एक मृतक पत्रकार की बनाई हुई तस्वीर देने का वायदा करता है। परन्तु बाद में वह उसके लिये मना कर देता है। 'अ' को कार्य के निष्पादन के लिये बाध्य किया जा सकता है। क्योंकि वास्तविक क्षति को ज्ञात करना मुश्किल है। इसी प्रकार यदि तीन माह में एक लेखक एक पुस्तक लिखने का वचन दे परन्तु बीमारी के कारण वह लिखने में असमर्थ रहे तो यहाँ पर निर्दिष्ट निष्पादन की मौन नहीं की जा सकती है।

(3) निष्पादन से मुक्ति (Exoneration) – जब संविदे का एक पक्षकार संविदे को पूरा करने में असमर्थ रहता है अर्थात् खण्डन कर देता है तो पीड़ित पक्षकार संविदे को समाप्त किया हुआ मान सकता है तथा ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्षकार अपने भाग के निष्पादन के लिये उत्तरदायी नहीं रहेगा।

(4) उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार (Caim for Quantum meriut) – इसका अभिप्राय किसी व्यक्ति को उतना ध्यान देना है जितना कि उसने अपने कार्य से अर्जित किया है। इस सिद्धान्त के आधार पर यदि एक पक्ष दूसरे पक्ष की प्रार्थना पर कोई कार्य करता है। अथवा उसने कोई कार्य किया हो जिसका पारिश्रमिक निश्चित न हो पाया हो तो वह अपने किये कार्य का पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है। उचित पारिश्रमिक कितना होगा यह विवाद की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ- 'अ', 'ब' को मकान बनाने का ठेका देता है, मकान के पूरा बनने से पूर्व ही 'अ' 'ब' से आगे काम करने के लिये मना कर देता है। ऐसी स्थिति में 'ब' 'अ' से रुपया पाने का अधिकारी है। इसी प्रकार यदि 'अ' एक चित्रकार 'ब' को तस्वीर बनाने का वचन देता है। परन्तु तस्वीर पूरी होने से पूर्व ही चित्रकारी की मृत्यु हो जाती है। चित्रकार का उत्तराधिकारी राशि पाने का अधिकारी नहीं है। क्योंकि चित्र के कार्य को भिन्न नहीं किया जा सकता है।

(5) घोषणा पत्र करने का अधिकार (Claim for Declaratory Suit) – पीड़ित पक्षकार इस बात की घोषणा के लिये संविदे से अब बाध्य नहीं है। न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है। ऐसा करने से पीड़ित पक्षकार को अपने दायित्व से मुक्ति मिल जाती है।

(6) निषेध आज्ञा पाने का अधिकार (Claim for Injunction) – न्यायालय पीड़ित पक्षकार के वाद की सत्यता के आधार पर निषेध आज्ञा प्रदान कर देते हैं। उदाहरणार्थ 'अ' 'ब' से एक मकान बेचने का संविदा करता है। 'अ' 'ब' को मकान न बेचकर 'स' को बैनामा करना चाहता है। ऐसी स्थिति में न्यायालय अन्य व्यक्ति को मकान बेचने से 'अ' को रोक सकता है।

3.7 हर्जाने का अर्थ एवं माप (Meaning and Measure of Demages) :

हर्जाने से अभिप्राय अर्थ–मुद्रा में क्षतिपूर्ति से है, जिसे कि पीड़ित पक्षकार संविदे के खण्डन की दशा में पाने का अधिकारी हो जाता है। संविदे के खंडन से हर्जाना क्षतिपूर्ति के रूप में आता है। दण्ड के

रूप में नहीं। इस कारण हर्जाने के लिये वाद प्रस्तुत किये जाने पर न्यायालय केवल हुई हानि के प्रति उचित क्षतिपूर्ति के लिए निर्णय दे सकता है। यदि किसी संविदे का खण्डन हो जाता है। तो पीड़ित पक्षकार हर्जाने के लिये वाद प्रस्तुत करता है। ऐसी स्थिति में हानि के निर्धारण की समस्या मुख्य समस्या होती है। इस संबंध में (Hadley vs. Baxendable 1954) का निर्णय महत्त्वपूर्ण है। जिसके अनुसार एक मिल मालिक ने एक मशीन उसी के अनुसार दूसरी मशीन बनाने के कारखाने में एक सार्वजनिक वाहक के द्वारा भेजी, परन्तु सार्वजनिक वाहक ने इस लापरवाही के कारण कारखाने में नहीं पहुँचाया जिसके कारण मिल मालिक को नई मशीन प्राप्त होने के कारण कारखाना बन्द करना पड़ा, जिसकी हानि के लिये मिल मालिक ने वाहक पर अभियोग, व्यापार में अर्जित किये जाने वाले लाभ के लिये चलाया, न्यायालय द्वारा इस प्रकार की अप्रत्यक्ष हानि के हर्जाने की दलील व्यर्थ कर दी गई। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 73 तथा 74 के अनुसार हर्जाने की माप की जाती है। इस संबंध में मुख्य प्रावधान इस प्रकार है -

(1) **पीड़ित पक्षकार को क्षतिपूर्ति का अधिकार (Right of Compensation to the Suffering Party)**– संविदा के खण्डन होने की दशा में पीड़ित, पक्षकार संविदा के खण्डन करने वाले पक्षकार से ऐसी हानियों की पूर्ति कराने का अधिकारी है, जब –

   (i) **साधारण परिणामस्वरूप हुई हो (Naturally Arise in the Usual Course)** – उदाहरणार्थ 'अ' 'ब' से 30 मन चावल के विक्रय का संविदा करके उसे पूरा नहीं करता तो 'ब' अन्य स्थान से चावल लेकर होने वाली हानि को पूरा कर सकता है।

   (ii) पक्षकारों का खण्डन के परिणामों का ज्ञान था - उदाहरणार्थ - 'अ' 'ब' को 100 किलो चावल 50 रू. प्रति मन की दर से बेचने का संविदा करता है तथा उसी दिन वह 'स' से 45 रू. मन गेहूँ खरीदने का सौदा करता है। यदि 'स' गेहूँ न दे सके तो 'अ' 'स' 500 रू. जो उसे इस व्यापार से लाभ होता है पाने का अधिकारी है।

(2) **अप्रत्यक्ष हानि की दशा में हर्जाना नहीं (No Right of Compensation for Indirect Losses)**– यदि खण्डन से हुई अप्रत्यक्ष हो तो पीड़ित पक्षकार क्षतिपूर्ति के लिये वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ– यदि वाहक को पुरानी मशीन किसी कारखाने में भेजने के लिये दी जाये जिससे उसे देखकर नई मशीन बनाई जा सके वाहक के द्वार देर में मशीन भेजने से यदि नई मशीन समय पर न मिले और फैक्टरी बंद करनी पड़े तो वाहक पर क्षति के लिये अभियोग नहीं चलाया जा सकता है।

(3) असुविधा को दूर करने के लिये विद्यमान साधनों का ध्यान - क्षति का अनुमान लगाते समय संविदे के निष्पादन न करने से उत्पन्न हुई असुविधाओं को दूर करने के लिये विद्यमान साधनों को ध्यान में रखना चाहिये। उदाहरणार्थ– 'अ' यदि 'ब' से एक कमरे की छत बनाने का संविदा करता है, परन्तु 'अ' वाद में इस संविदे का खण्डन कर देता है। और 'ब' की छत गिर जाती है तो 'ब' पर क्षतिपूर्ति के लिये वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

(4) निश्चित नियम हर्जाने की दशा में उस हर्जाने की पूर्ति – यदि पक्षकार स्पष्ट रूप से यह संविदा कर ले कि संविदे की खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार को हर्जाने के रूप में नियत राशि देय

होगी तो पीड़ित पक्षकार द्वारा हानि को प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है। यह नियत हर्जाना पाने का अधिकारी है।

3.7.1 हर्जाने के प्रकार (Kinds of Demages)

एक पीड़ित पक्षकार दूसरे पक्षकार से मुख्य रूप से निम्न हर्जाने के लिये मांग कर सकता है –

(1) **सामान्य तथा साधारण हर्जाना (Ordinary Damages)** – ऐसी हानि जो संविदे के खंडन के कारण पीड़ित पक्षकार को हुई है। हानि की राशि की गणना परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

(2) **विशेष अथवा असाधारण हानि (Special or Extra Ordinary Damages)** – विशेष हानि वह होती है जो कि विशेष परिस्थितियों में संविदे के खण्डन के कारण उठानी पड़ती है। इस संबंध में Hadly vs. Baxendable का निर्णय महत्त्वपूर्ण है। जिसमें एक वाहक कंपनी को स्पष्ट रूप से पशु प्रदर्शनी में चारा भेजने के लिए कहा गया था और चारा ना भेज पाने की दशा में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि कंपनी को हानि होगी। परन्तु वाहक कंपनी ने चारा बाद में भेजा तथा ऐसी स्थिति में वाहक कंपनी को चारे के विक्रय से होने वाले लाभ के लिये उत्तरदायी ठहराया गया।

(3) **आदर्श या मानहानि का हर्जाना –** संबंधित पक्षकारों को कभी-कभी संविदे के खण्डन से अत्याधिक मानहानि होती है। उसकी प्रतिष्ठा पर चोट पहुँचती है। अथवा चैक के अनादूत हो जाने पर की जाती है।

(4) **निस्तीर्ण हर्जारा अथवा दण्ड (Liquidated Damages and Penalty)** – जब न्यायालय के ऊपर हर्जाने के निर्धारण का कार्य सौपा गया, पीड़ित पक्षकार द्वारा समय पर यह कार्य किया जाये तो इसे हम निस्तीर्ण हर्जाना या दण्ड कहते हैं।

(5) **नाममात्र की क्षतिपूर्ति –** जब एक पक्षकार को संविदे की समाप्ति के विशेष हानि न हुई तो केवल अधिकार स्थापित करने के दृष्टिकोण से न्यायालय दोषी पक्षकार पर नाममात्र के लिये जुर्माना कर देता है।

(6) **ब्याज के रूप में हर्जाना (Interest by way of Damages)** – संविदा भंग होने से ब्याज हर्जाने के रूप में दी जा सकती है। यदि (1) राजनियम द्वारा ब्याज का रिवाज हो। (2) ब्याज का समझौता पहले का दिया गया हो। (3) संबंधित राजनियमों में ब्याज की हर्जाने के रूप में व्यवस्था हो।

3.7.2 नैराश्य अथवा विवशता का सिद्धान्त (Principal of Fraustration of a Contract) – नैराश्यता के सिद्धान्त का आशय किसी वैधानिक अनुबन्ध की ऐसी आकस्मिक घटनाओं या परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण समय से पूर्व ही समाप्त होते हैं। जिनसे कि उस संविदे की पूर्ति समझौते के पक्षकारों के ज्ञान एवं नियंत्रण के बाहर ही प्राचीन काल में English Common Law संविदे की पूर्ति के संबंध में बहुत कठोर था जिसका उदाहरण 'Paradine vs. Jane' (1647) के निर्णय से मिलता है। जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति जिसने किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत कोई वचन दिया है अथवा दायित्व ग्रहण किया है। उसे निष्पादित करने के लिये पूर्णतः बाध्य होता है। अर्थात् शर्तरहित वचन के निष्पादन के लिये हर परिस्थिति में बाध्य होगा, इस नियम की व्याख्या करते समय न्यायालय ने यहाँ तक कहा कि यदि किसी व्यक्ति ने मकान की मरम्मत का दायित्व लिया है तो असामान्य दशाओं जैसे – मकान शत्रुओं के गिरा देने अथवा बिजली गिरने के कारण नष्ट होने पर भी उसे मरम्मत करनी पड़ेगी।

नैराश्यता का सिद्धान्त इस प्रमुख न्यायसूत्र पर आधारित है कानून असंभव कार्य करने के लिये बाध्य नहीं कर सकता।

(i) युद्ध की घोषणा

(ii) विधि में परिवर्तन

(iii) आपत्तिकालीन नियमों

(iv) किसी देवी प्रकोप से उत्पन्न हो सकती है।

अर्थात् यदि किसी कार्य का निष्पादन असंभव हो गया है तो उस कार्य निष्पादन के लिये उस व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जा सकता है।

3.7.3 नैराश्यता के सिद्धान्त की सीमाएँ (Limitations of the Doctrine of Frustration) :

(1) नैराश्यता का सिद्धान्त व्यापारिक असंभवता, किसी अन्य व्यक्ति के असफलता जिसके कार्य पर वचनदाता ने विश्वास किया हो, सज्जित मकानों के किराये पर लेने के अनुबन्ध इत्यादि के मामलों में लागू होता है।

(2) नैराश्यता के आधार पर अनुबन्ध केवल तभी समाप्त समझा जायेगा जबकि दोनों पक्षों का समान अभिप्राय असफल रहा हो।

(3) यद्यपि अनुबन्ध में वर्णित शर्तों का निर्णय न्यायालय द्वारा किया जाना है। फिर भी ऐसी शर्त को नहीं माना जा सकता है जो कि अनुबन्ध की स्पष्ट शर्तों से मेल न खाती हो।

3.7.4 नैराश्यता संबंधी प्रावधान (Provision relating to Frustration) :

भारतीय संविधा अधिनियम की धारा 56 में आकस्मिक असंभवता का वही अर्थ है जो कि 'English Law' में नैराशतय (Frustration) का धारा 56 में इस विषय से संबंधित निश्चित नियम निर्धारित किये गये हैं और कोई भी बात पक्षकारों के अभिप्राय: के अनुसार निश्चित करने के लिये नहीं छोड़ी गई है।

अब विधि सुधार के (नैराश्यताग्रस्त) अनुबन्ध 1943 के पारित होने से भारतीय अधिनियम तथा 'English Law' में कोई अंतर नहीं रहा है। उपरोक्त वर्णित अधिनियम के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं -

(1) अनुबन्ध के विवशताग्रस्त होने से पूर्व दिया गया अग्रिम धन वापसी योग्य होता है।

(2) देव धन की देयता समाप्त हो जाती है, तथा

(3) किये गये आंशिक कार्य के लिये उचित पारिश्रमिक का अधिकार मिल जाता है।

3.8 निस्तीर्थ क्षति एवं दण्ड (Liquidated Damages and Panalty) :

वास्तव में निस्तीर्ण क्षति एवं दण्ड का भेद अंग्रेजी सन्नियम में किया गया है। जिसके अनुसार उचित क्षतिपूर्ति के रूप में दोषी से अधिक राशि की वसूली दण्ड कहलाता है। इन दोनों का मुख्य अन्तर इन आधारों पर किया गया है।

(1) **उद्देश्य का आधार –** निस्तीर्ण क्षति के अन्तर्गत दोषी पक्षकार से उचित धन राशि की मांग करना तथा दण्ड का उद्देश्य दोषी पक्षकार से दण्ड स्वरूप अधिक मांग करना होता है। इस प्रकार निस्तीर्ण क्षति में उचित वसूली तथा दण्ड में अधिक वसूली का उद्देश्य निहित है।

(2) **निर्धारण के समय का आधार –** निस्तीर्ण क्षति के अन्तर्गत दी जाने वाली क्षति का निर्धारण पहले से ही होता है। इसके विपरीत दण्ड की राशि का निर्धारण न्यायालय द्वारा परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

भारतीय संविदे अधिनियम में इस प्रकार का कोई विभक्तिकरण नहीं किया गया है। धारा 74 के अनुसार केवल उचित क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था है। जिसके अनुसार "यदि संविदा की शर्तो की खण्डन की दशा में दी जानी वाली धनराशि स्पष्ट है। अथवा संविदे में अन्य शर्त दण्ड स्वरूप निर्धारित कर दी गई है। तो ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्ष केवल उचित क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी है। जो निर्धारित धनराशि अथवा दण्ड में जैसी दशा हो उससे अधिक नहीं हो सकती। भारतीय संविदा अधिनियम इस बात पर अधिक महत्त्व नहीं देता कि वह क्षतिपूर्ति निस्तीर्ण क्षति के रूप में है अथवा दण्ड के रूप में उदाहरणार्थ- 'अ' 'ब' के साथ यह संविदा करता है कि यदि वह निश्चित तिथि तक 1000 रुपये देने में असफल रहा तो वह 1500 रु. देगा। निर्दिष्ट तिथि तक धनराशि देने की असमर्थता के कारण न्यायालय उसे अधिक से अधिक 1500 रुपये देने के लिये कह सकता है। यह राशि कम की जा सकती है, अधिक नहीं।

3.9 उचित पारिश्रमिक (Quantum Meruit) :

उचित पारिश्रमिक का अभिप्राय किसी व्यक्ति को उतना धन देना है जितना कि उसने अर्जित किया है। यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की प्रार्थना पर उसके लिए कोई कार्य करता है अथवा उसकी प्रार्थना पर उसकी पूर्ति पीड़ित पक्षकार को अपने द्वारा किये गये कार्य के लिए उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार होता है। उदाहरणार्थ- 'अ' 'ब' से एक बगीचा लगाने के लिये 3000 रु. में संविदा करता है। जो 3 वर्ष में लग जाना चाहिये। व उसके वचन के अनुसार कार्य प्रारंभ कर देता है। दो वर्ष उपरान्त 'अ' अपनी ओर से कार्य करने के लिये मना कर देता है तो 'अ' दो वर्ष उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है। परन्तु यदि कार्य ऐसा हो जिसे पृथक न किया जा सके वह पूर्ण न हो पाया हो तो धनराशि के लिये विवाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ – 'अ' 'ब' से एक तस्वीर बनाने का संविदा करता है। तस्वीर पूरी होने से पूर्व ही चित्रकार की मृत्यु हो जाती है। तो चित्रकार का अधिकारी उचित पारिश्रमिक की मांग नहीं कर सकता है।

उचित पारिश्रमिक के संबंध में मुख्य प्रावधान इस प्रकार है -

(1) अनुबन्ध भंग हो जाने की परिस्थिति में पीड़ित पक्षकार ने जितना कार्य किया है। उसका पारिश्रमिक प्राप्त कर सकता है। उदाहरणार्थ – कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने Hostel बनाने के लिये A को ठेका दिया है। यू.जी.सी. द्वारा अनुदान न मिलने के कारण ठेका कार्य बीच में रोक दिया गया तो ठेकेदार किये गये कार्य के लिये उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है।

(2) जब तकनीकी त्रुटि के कारण अनुबन्ध अप्रवर्तनीय पाया जाये तो जिस व्यक्ति ने अनुबन्ध के अधीन कुछ कार्य किया है। उसे उस कार्य के लिये उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार है। उदाहरणार्थ-

कंपनी के संचालक मण्डल द्वारा रमन की नियुक्ति मैनेजर के रूप में कर दी गई। रमन ने कार्य आरंभ कर दिया परन्तु कुछ समय उपरान्त संचालक मण्डल का गठन अवैधानिक पाया गया जिसके लिये 'रमन' को उसके पद से निरस्त कर दिया गया। 'रमन' कंपनी से अपने कार्यकाल का उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है।

(3) यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे कार्य या सेवा का लाभ उठाता है जिसको बिना पारिश्रमिक के करने का दूसरे पक्षकार को कोई अभिप्राय नहीं था तो पहले पक्षकार की उस कार्य या सेवा के लिये दूसरे पक्षकार को पारिश्रमिक देना होगा। उदाहरणार्थ - 'कमल दीपक' के यहाँ अपनी वस्तु भूल से छोड़ जाता है। जिसे दीपक अपने हित के लिये प्रयोग कर लेता है। कमल उस वस्तु का उचित मूल्य पाने का अधिकारी है।

3.9.1 सिद्धान्त की परिसीमाएँ (Limitations of Principals of Quantam Meriut) :

(1) अभिभाष्यनीय अनुबन्ध – इस अनुबन्ध में संपूर्ण कार्य के पूरा होने पर ही प्रतिफल के भुगतान का वचन दिया गया हो तो आंशिक निष्पादन के लिये पक्षकार को पारिश्रमिक पाने का अधिकार नहीं होगा। उदाहरणार्थ - जहाज पर एक नाविक को इस शर्त पर रखा गया कि संपूर्ण यात्रा की पूर्ति के बाद उसे इकट्‌ठा पारिश्रमिक दिया जायेगा। यात्रा पूरी होने के पूर्व ही उस नाविक की मृत्यु हो गई तो नाविक के उत्तराधिकारी को नाविक की सेवाओं के लिये पारिश्रमिक पाने का अधिकार नहीं होगा। इस संबंध Culter vs. Powell (1807) का निर्णय महत्वपूर्ण है।

(2) अनुबन्ध भंग करने पर दोषी व्यक्ति – अनुबन्ध भंग करने पर दोषी व्यक्ति को उचित पारिश्रमिक के सिद्धान्त के अधीन कोई भी प्रतिफल या प्रतिहार पाने का अधिकार नहीं हो सकता। इस संबंध में (Sumpter vs. Hedges (1898) का निर्णय महत्त्वपूर्ण है जिसके अनुसार एक राज Mason जो बीच में स्वेच्छा से कार्य छोड़ दे वह अपने द्वारा किये गये कार्य के लिये पारिश्रमिक पाने का अधिकारी नहीं है। लेकिन अपने सामान के लिये उचित मूल्य पाने का अधिकारी है। परन्तु इस सिद्धान्त के भी दो अपवाद है - पहले यदि विराजनीय अनुबन्ध में पीड़ित पक्षकार ने दोषी पक्षकार द्वारा किये गये कार्य का लाभ उठाया है। तो दोषी पक्षकार उचित पारिश्रमिक के सिद्धान्त पर किये गये कार्य के लिये पारिश्रमिक की मांग कर सकता है। दूसरे की पूर्ति के उपरान्त संपूर्ण पारिश्रमिक का भुगतान किया जाना हो और काम पूरा कर दिया हो लेकिन दोषपूर्ण ढंग से किया गया है, तो दोषी पक्षकार की देयराशि में से दोषपूर्ण कार्य के लिये कटवाकर शेष राशि प्राप्त करने का अधिकार होता है।

(3) पारिश्रमिक की मांग – उस समय तक नहीं की जा सकती है। जहां तक कि किये गये कार्य के लिये पारिश्रमिक देने का स्पष्ट अनुबन्ध न हो।

3.9.2 ब्याज का भुगतान (Payment of Interest) :

निस्तीर्ण क्षति एवं दण्ड के विषय पर ब्याज के भुगतान के संबंध में विभिन्न निर्णयों के आधार पर कुछ महत्त्वपूर्ण नियम स्थापित हो गये हैं -

(1) जब धन का भुगतान किसी निदिष्टि तिथि पर दिये जाने के लिये कोई अनुबन्ध नहीं है तो क्षतिपूर्ति के रूप में ब्याज की मांग नहीं की जा सकती। जब अनुबन्ध में यह व्यवस्था है कि धन का भुगतान

एक निर्धारित तिथि तक किया जाना है और त्रुटि की दशा में वह ब्याज सहित देय होगा, तो धन ब्याज सहित देय होगा इस वर्णन को प्रभावशाली मानेगा यदि ब्याज उचित है। यदि ब्याज अत्यधिक है तो न्यायालय उसमें कमी कर दे।

(2) जब अनुबन्ध में यह व्यवस्था है कि मूलधन की वर्णित तिथि पर भुगतान करने की त्रुटि की दशा वर्णित ब्याज में अधिक ब्याज देय होगा तो यदि अधिक ब्याज की त्रुटि की तिथि में देय है। उचित है। तो उचित क्षतिपूर्ति मानी जाती है और देय होती है। परन्तु यदि ब्याज अत्यन्त अधिक है। जैसे यदि वृद्धि 12% 75% है तो वह दण्ड माना जायेगा और उसमें कमी की जायेगी। यदि अधिक ब्याज चाहे वह उचित दर है नहीं। अनुबन्ध की तिथि से देय है और त्रुटि को तिथि से नहीं, तो सदैव दण्ड के रूप में मानी जायेगी और कमी की जायेगी।

(3) न्यायालय प्राय चक्रवृद्धि ब्याज के पक्ष में नहीं होते। अनुबन्ध में व्यवस्था होने पर भी वह देय हो सकता है। जब अनुबन्ध में व्यवस्था है कि मूलधन पर साधारण ब्याज का भुगतान करने की दशा में इसी दर चक्रवृद्धि ब्याज देय होगा तो वह धारा 74 के अधीन दण्ड नहीं है और उसमें कमी की जायेगी। ऐसी दशा न्यायालय या तो साधारण ब्याज की दर बढ़ाकर या साधारण ब्याज की दर से चक्रवृद्धि ब्याज दिला सकता है।

(4) ऐसा निर्णय किया जा चुका है कि जब किसी अनुबन्ध में ऐसी व्यवस्था है कि ब्याज 24% वार्षिक की दर से देय होगा और यह भी व्यवस्था है कि यदि ऋणी प्रत्येक वर्ष के अन्त में बिना त्रुटि किये हुये ऋण देता है तो ऋणदाता 18% की दर से ब्याज स्वीकार कर लेगा, तो देय तिथि पर त्रुटि की दशा में ऋणदाता 24% वार्षिक की दर से ब्याज पाने का अधिकारी है। ऐसी व्यवस्था दण्डस्वरूप नहीं है।

3.9.3 उपयुक्त रूप से अनुबन्ध निरस्त करने वाले पक्षकार का अधिकार :

यदि कोई व्यक्ति उपयुक्त रूप से किसी अनुबन्ध को निरस्त करता है तो वह ऐसी क्षतिपूर्ति के लिए अधिकारी है जोकि उसे अनुबन्ध के निष्पादन न होने के कारण उठानी पड़ती है। उदाहरण के लिये अ, एक गायिका किसी थियेटर के मैनेजर ब के साथ उसके थियेटर में अगले दो माह तक प्रत्येक रात गाने का अनुबन्ध करती है। वे उसे प्रत्येक रात के गायन के लिये 100 रुपये देने का वचन देता है। दसवी रात को अ अपनी इच्छानुसार जानकर थियेटर से अनुपस्थित हो जाती है। फलस्वरूप व अनुबन्ध को निरस्त कर देता है। ब अ से हानि की क्षति पाने का अधिकारी है। जो उसे अनुबन्ध के निष्पादन न होने से हुई है।

4. सारांश (Summary)

अनुबन्ध की समाप्ति पक्षकारों द्वारा अपने-अपने वचनों का निष्पादन करके की जा सकती है। यह निष्पादन वास्तविक अथवा प्रस्तावित हो सकता है। परन्तु यदि निष्पादन प्रस्तावित हो तो इसके लिये भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में दिये गये नियमों का पालन किया जाना अनिवार्य हो जाता है। सामान्यतया निष्पादन स्वयं प्रस्तावक किया जाना चाहिए परन्तु विशेष परिस्थितियों में यह प्रस्तावक की ओर से उसके वैधानिक प्रतिनिधि द्वारा भी विकसित किया जा सकता है। प्रस्ताव के निष्पादन का समय एवं स्थान अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार होना चाहिये। प्रतिव्यवस्था वचनों के निष्पादन का क्रय उनमें दिये गए वचनों की प्रकृति तथा शर्तों पर निर्भर करता है, यह उसी क्रय के अनुसार निष्पादित किये जाने होते

हैं। यदि व्यवहार वित्तीय मामलों से संबंधित है तो उन पर धारा 59 से 61 में दिये नियम लागू होते हैं। इसके अतिरिक्त पारस्परिक ठहराव द्वारा भी अनुबन्ध की समाप्ति संभव है इसमें मुख्यत: परिवर्तन छुटकारा अथवा त्याग आश्वासन तथा संतुष्टि आदि शामिल किये जाते हैं। निष्पादन की असंभावना की स्थिति में भी अनुबन्ध को समाप्ति का कारण बन सकती है। कई बार अनुबन्ध की समाप्ति कानून के लागू किये जाने पर भी उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में अनुबन्ध समाप्त हो जाता है तथा पक्षकार अपने–अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाते हैं :

अनुबन्ध का खण्डन भी अनुबन्ध की समाप्ति का कारण बन सकता है तथा ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्षकार को दोषी पक्षकार के विरूद्ध कुछ विशेष अधिकार जैसे हर्जाने का अधिकार, निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार, निष्पादन से मुक्ति आदि प्राप्त होते हैं। हर्जाने की गणना करते समय विभिन्न नियमों की पालना की जाती है जिससे न्यायसंगत हर्जाना मापा जा सके। हर्जाने के विभिन्न प्रकार जैसे सामान्य अथवा साधारण हर्जाना, विशेष अथवा असाधारण हर्जाना, निस्तीर्ण हर्जाना अथवा दण्ड आदि होते हैं। पीड़ित पक्षकार को कौन सा हर्जाना प्राप्त होगा यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसी प्रकार वित्तीय लेन–देनों में पीड़ित पक्षकार को साधारण या चक्रवृद्धि ब्याज प्राप्त होगा यह भी अनुबन्ध की शर्तो एवं परिस्थितियों पर निर्भर होता है।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Books for References)

1. व्यवसायिक नियमन रूपरेखा - Dr. R.C. Chawla
2. व्यवसायिक नियमन रूपरेखा – Dr. Ashok Sharma
3. व्यवसायिक नियमन रूपरेखा - Dr. S.C. Aggarwal
4. Business Laws - Rohini Aggarwal
5. Mercantile Law - Dr. M.C.Kuchhal
6. Mercantile Law - Dr. P.S. Goggana
7. Mercantile Law - Dr. Autar Singh
8. Mercautile Law - Dr. N.D. Kapoor

6. नमूने के लिये प्रश्न (Sample Questions)

1. एक अनुबन्ध के निष्पादन के समय और स्थान के संबंध में क्या वैधानिक नियम है? अनुबन्धों के निष्पादन में समय कब अनुबन्ध का सार माना जाता है और इसके क्या परिणाम होते हैं?

   What are the rules relating to the time and place of the performance of a contract under contract act? When is the time deemed to be the essence of the contract in the performance of the contract and with what consequences ?

2. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार भुगतान के विभाजन के संबंध में नियमों का वर्णन कीजिए।

State the laws governing the appropriation of payments according to Indian Contract Act.

3. किन परिस्थितियों से अनुबन्ध के निष्पादन की कोई आवश्यकता नहीं होती है?

Under What circumstances contract need not be performed?

4. नैराश्य द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति से आप क्या समझते हैं? अकस्मात् असंभवता द्वारा एक अनुबन्ध के पक्षकारों का उत्तरदायित्व किस प्रकार प्रभावित होता है? तीन उदाहरण दो।

What do you understand by discharge of contract by frustration? How are the Liabilities of parties to a contract affected by subsequent impossibility? Give at least three example.

5. पारस्परिक वचनों के निष्पादन के संबंध में अनुबन्ध के प्रावधानों की चर्चा कीजिये।

Give the illustrations the provisions of the Indian Contract Act relating to the performance of reciprocal promises.

6. निष्पादन की असंभवता अनुबन्ध पूरा करने के लिये बहाना नहीं होती।" इस कथन की चर्चा कीजिये।

"Impossibility of performance is, as a rule, not an excuse for non performance of contract." Discuss.

7. 'अनुबन्ध भंग' अनुबन्ध को समाप्त करने का एक तरीका है। समझाइये।

Explain "breach of contract" as a mode of discharge of contract.

8. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये -

Write short notes on the following -

1. उपकरण (Novation)
2. छुटकारा अथवा त्याग (Rescission or Waiver)
3. आश्वासन एवं संतुष्टि (Accord and Satisfaction)
4. परिवर्तन (Alteration)
5. प्रत्याशित अनुबन्ध भंग (Anticipatory Breach of Contract)
6. उत्तरदायित्व का त्याग और (Renunciation or Repudiation, and)
7. अकस्मात् असंभवता या नैराश्य (Supervening impossibility or Frustration)

9. अनुबन्ध खण्डन की दशा में पीड़ित पक्षकार को क्या अधिकार मिलते हैं?

What are the remedies available to the aggrieved party of breach of Contract.

10. हर्जाने के अर्थ एवं प्रकारों का वर्णन करें।

Describe the meaning and types of damages.

Paper : BC-201 Business Laws **Writer : Shashi Khurana**

Lesson No : 5

हानि रक्षा एवं गारण्टी के अनुबन्ध
(Contract of Indemnity and Guarantee)

अध्याय की रूपरेखा (Index of the Chapter)

1. परिचय (Introduction)
2. उद्देश्य (Objective)
3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)
   - 3.1 क्षतिपूर्ति निरक्षा अनुबन्ध
     - 3.1.1 हानिरक्षक अनुबन्ध के लक्षण
     - 3.1.2 हानिरक्षक के दायित्व का प्रारम्भ
   - 3.2 हानिरक्षाधारी के अधिकार
   - 3.3 हानिरक्षक के अधिकार
     - 3.4.1 प्रतिभूति अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण
     - 3.4.2 गारण्टी सम्बन्धी अन्य नियम
   - 3.5 हानिरक्षा तथा प्रतिभूति अनुबन्ध में अन्तर
   - 3.6 प्रतिभूति के भेद
     - 3.6.1 विद्यमान प्रतिभूति
     - 3.6.2 चालू प्रतिभूति
     - 3.6.3 चालू प्रतिभूति का खण्डन
     - 3.6.4 विशिष्टि तथा चालू प्रतिभूमि में अन्तर
   - 3.7 प्रतिभू के उत्तरदायित्व
   - 3.8 प्रतिभू के अनुबन्ध की समाप्ति
4. सारांश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के लिए प्रश्न (Sample Questions)

1. परिचय (Introduction)

इस अध्याय में हानि रक्षा या क्षतिपूर्ति के अनुबन्धों और गारण्टी के अनुबन्धों को विस्तार से समझाया गया है। हानिरक्षा अनुबन्ध की क्या विशेषताएँ हैं और हानिरक्षाधारी के क्या अधिकार हैं और क्या दायित्व हैं, हानिरक्षा अनुबन्धों (Contracts of Indemnity) का Business Regulatory Framework में विशेष महत्त्व है। इस अनुबन्धों में भी अनुबन्ध की तरह सभी लक्षण पाये जाते हैं। इसमें हानि रक्षक, हानिरक्षाकारी को उसके या अन्य व्यक्ति के आचरण से अथवा किसी घटना के कारण होने वाली हानि की पूर्ति का वचन देता है।

2. उद्देश्य (Objective) :

(i) हानिरक्षक या क्षतिपूरक अनुबन्धों का विद्यार्थियों को इस प्रकार के अनुबन्धों के अर्थ, लक्षण के बारे में विस्तार से समझाया है।

(ii) इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य हानि रक्षाधारी या हानि रक्षक के दायित्वों का सही तरह से ज्ञान प्राप्त करना है।

(iii) इस अध्याय में प्रतिभूति अनुबन्धों (Gurantee Contract) को भी विस्तार से समझाया गया है। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 126 के अनुसार एक गारण्टी अनुबन्ध से आशय एक ऐसे अनुबन्ध से है जिसमें एक व्यक्ति किसी तृतीय पक्षकार की त्रुटि से उसके वचन का निष्पादन करने या उसके दायित्व को पूरा करने का वचन देता है।

(iv) इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य हारिरक्षा और प्रतिभूति अनुबन्धों में आने वाले पक्षकारों को उनके अधिकार और दायित्वों के बारे में अवगत कराना है।

3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents) :

इस अध्याय में हम दो विशिष्ट अनुबन्धों - क्षतिपूर्ति और गारण्टी के अनुबन्धों का अध्ययन करेंगे। इन अनुबंधों पर अनुबन्ध के सामान्य सिद्धान्तों के साथ-साथ कुछ विशेष सिद्धान्त भी लागू होते हैं। जहाँ पर उन सभी विशेष सिद्धान्तों का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया जा रहा है।

3.1 क्षतिपूर्ति या हानिरक्षा अनुबन्ध (Contract of Indemnity) :

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 124 के अनुसार, "हानिरक्षा या क्षतिपूर्ति अनुबन्ध से आशय ऐसे अनुबन्ध से है जिसके द्वारा एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है जो वचनदाता के स्वयं के आचरण से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुंचे।"

(A contract by which one party promises to save the another from losses caused to him by the conduct of the promisor himself or by the conduct of any other person, it is called a contract of indemnity: - Section 124)

जो व्यक्ति हानि से बचने का वचन देता है उसे हानिरक्षक (Indemnifier) और जिसे हानि से बचाने का वचन दिया जाता है उसे हानि रक्षाधारी (Indemnity holder/Indemnified) कहते हैं।

उदाहरण (Example) –

A, B को एक गाय बेचने का अनुबन्ध करता है। C, A को कहता है कि तुम यह गाय B की जगह उसी मूल्य पर मुझे दे दो। यदि B तुम पर कोई वाद करेगा (case) तो भी हर्जाना तुम्हें देना पड़ेगा।

वह तुम्हें दे दूँगा। यहाँ A और C के बीच में जो अनुबन्ध है वह क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध कहा जाएगा। यहाँ C हानिरक्षक (Indemnifer) तथा A हानिरक्षाधारी (Indemnity-holder) है।

उपर्युक्त परिभाषा क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के क्षेत्र को सीमित करती है क्योंकि इसमें केवल ऐसी हानि को पूरा करने का वचन दिया जाता है जो वचनदाता के स्वयं अपने आचरण या किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से उत्पन्न होती है। इस परिभाषा में हानिरक्षाधारी के आचरण से पहुंचने वाली हानि की रक्षा के लिए कुछ भी नहीं कहा गया है। इसके अतिरिक्त उन हानियों की पूर्ति के बारे में भी कुछ नहीं कहा गया जो मानवीय आचरण के अतिरिक्त अन्य कारणों से उत्पन्न घटनाओं या दुर्घटनाओं से उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में बीमा अनुबन्ध (Insurance Contracts) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध की परिधि में नहीं माने जा सकते जबकि आजकल ऐसी दुर्घटनाओं/घटनाओं से उत्पन्न हानियों की पूर्ति के लिए बीमा के अनुबन्ध किये जाते हैं। यदि इस परिभाषा का सही अर्थ लगाया जाए तो बीमे के अनुबन्ध क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के अन्तर्गत नहीं आते।

परन्तु वास्तविकता यह है कि बीमे के सभी अनुबन्ध (जीवन-बीमा को छोड़कर) क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध है। बीमा अनुबन्धों को क्षतिपूर्ति अनुबन्धों की परिधि से बाहर करना, कभी भी इस विशेष अनुबन्ध का उद्देश्य नहीं रहा। अत: उपरोक्त परिभाषा क्षतिपूर्ति अनुबन्धों की संकुचित परिभाषा मानी जाती है।

हाईकोर्ट के जब एम.सी. छांगला ने धारा 124 द्वारा दी गई क्षतिपूर्ति अनुबन्ध की परिभाषा को संकुचित बताया तथा उसे अंग्रेजी राजनियम के आधार पर विस्तृत रूप में प्रयोग किया जिसके अनुसार, "वचनदाता किसी भी घटना के कारण होने वाली हानि को पूरा करने के लिए बाध्य होता है, क्योंकि तभी बीमा के अनुबन्धों को क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में शामिल किया जा सकता है। इस परिभाषा में ऐसी सब हानियों को पूरा करने का वचन शामिल है जो किसी भी कारण से उत्पन्न हुई हो जैसे अग्नि, समुद्री जोखिमें, दुर्घटनाओं से हुई हानि। अत: इस परिभाषा का क्षेत्र व्यापक है तथा भारतीय न्यायालयों ने इसे स्वीकार भी किया है।

3.1.1 हानिरक्षा अनुबन्ध के लक्षण (Essentials of the Contracts of Indemnity) : हानिरक्षा या क्षतिपूर्ति अनुबन्ध एक विशिष्ट श्रेणी के अनुबन्ध होते हैं जिसमें निम्नलिखित विशेषताएँ या लक्षण होते हैं -

(1) हानिरक्षा का अनुबन्ध अन्य अनुबन्धों की तरह होता है और उन सभी लक्षणों का विद्यमान होना आवश्यक है जो कि एक सामान्य अनुबन्ध के लिए जरूरी है जैसे दो पक्षकार, प्रस्ताव एवं स्वीकृति, स्वतन्त्र सहमति, अनुबन्ध करने की क्षमता, वैध उद्देश्य एवं प्रतिफल आदि।

(2) इसके अन्तर्गत हानिरक्षक (Indemnifier) – हानिरक्षाधारी (Indemnity-holder) की उसके अथवा अन्य व्यक्ति के आचरण से अथवा किसी घटना से होने वाली हानि की पूर्ति करने का वचन देता है। इसमें जो व्यक्ति हानि से बचाने का वचन देता है, उसे हानिकारक तथा जिसे हानि से बचाने का वचन दिया जाता है उसे हानिरक्षाधारी कहा जाता है।

(3) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध लिखित, मौखिक या गर्भित किसी भी प्रकार का हो सकता है। स्पष्ट अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक हो सकता है। गर्भित अनुबन्ध की जानकारी मामले की परिस्थितियों, पक्षकारों के व्यवहार आदि के आधार पर हो सकती है।

(4) क्षतिपूर्ति के अनुबन्धों में हानिरक्षक (Indemnifier) का दायित्व तब उत्पन्न होता है जब अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार हानिरक्षाधारी को कोई हानि पहुँचती है।

(5) हानिरक्षक (Indemnifier) की ऐसी किसी भी हानि की पूर्ति करनी पड़ती है जो हानि रक्षाधारी (Indemnity-holder) के आचरण से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचती है।

3.1.2 हानिरक्षक के दायित्व का आरम्भ : इस प्रश्न पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के विभिन्न मत हैं। लाहौर, नागपुर और मुम्बई के न्यायालयों का मत है कि हानिरक्षक का दायित्व केवल तभी माना जाएगा जबकि हानिरक्षाधारक को वास्तव में हानि हुई हो। उसके विपरीत कोलकाता, भारत, इलाहाबाद उच्च न्यायालयों के अनुसार जब हानिरक्षाधारी को किसी दायित्व की पूर्ति के लिए कहा जाए तो वह स्वयं दायित्व का निष्पादन किये बिना ही हानिरक्षक को दायित्व पूर्ति की स्थिति में लाने के लिए बाध्य कर सकता है। उपरोक्त दो मतों में दूसरा मत अधिक उचित लगता है और वह अंग्रेजी अधिनियम के अनुकूल भी है।

3.2 हानिरक्षाधारी के अधिकार (Rights of Intiemnity Holder) या हानिरक्षक के दायित्व (Liabilities of Indemnifier) :

धारा 125 के अनुसार – हानिरक्षा के अनुबन्ध में हानिरक्षाधारी को उस पर वाद प्रस्तुत होने पर हानिरक्षक से निम्नलिखित प्राप्त करने का अधिकार है –

(1) क्षति की पूर्ति (Claim for Damage) : धारा 125(1) के अनुसार हानिरक्षाधारी है हर्जाने/क्षति वसूल कर सकता है जो उसे ऐसे मुकदमें के सम्बन्ध में देने पड़ते, जिन पर क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध लागू होता है।

(2) खर्चों की प्राप्ति (Claim for Cost) : ऐसा सब व्यय/खर्चे को उसे किसी ऐसे वाद को प्रस्तुत करने और रक्षा करने में चुकाने पड़े, जिसमें हानिरक्षा का वचन लागू है।

(3) ऐसा समस्त धन जो उसे किसी ऐसे वाद के समझौते की शर्तो के अनुसार भुगतान किया हो किन्तु हानिरक्षा के उपयुक्त अधिकार तभी प्राप्त होते हैं जबकि उसने –

(a) हानिरक्षक के या वचनदाता के आदेशों का उल्लंघन किया हो।

(b) हानिरक्षाधारी ने इस प्रकार कार्य किया है जिस प्रकार क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के अभाव में कोई भी विवेकशील व्यक्ति समान परिस्थितियों में करता है।

3.3 हानिरक्षक के अधिकार (Rights of Indemulfier) :

हानिरक्षा अनुबन्ध के अन्तर्गत जब हानिरक्षक, हानिरक्षाधारी की क्षतिपूर्ति कर देता है तो उसके बाद स्वयं हानिरक्षक को क्या अधिकार है इस विषय पर अधिनियम मौन है किन्तु इस सम्बन्ध में अनेक न्यायालयों द्वारा किये गए निर्णय के आधार पर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।

(1) स्थान ग्रहण करने का अधिकार : जब हानिरक्षक ने क्षतिपूर्ति कर दी है तो उसे वह समस्त अधिकारों को प्राप्त कर लेता है जो हानिरक्षाधारी के होते हैं किन्तु यह अधिकार हानिरक्षक को केवल उसी स्थिति में प्राप्त होते हैं जब उसने क्षति की पूर्ति कर दी हो इससे पूर्व नहीं।

(2) हानिरक्षाधारी के नाम से वाद प्रस्तुत करने का अधिकार : यदि हानिरक्षक ने अनुबन्ध के आधीन हानिरक्षाधारी की क्षतिपूर्ति कर दी है तो हानिरक्षक को हानिरक्षाधारी के नाम से तीसरा पक्षकारों पर मुकद्मा चलाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(3) क्षतिपूर्ति की राशि तक ही अधिकार : जिस सीमा तक हानिरक्षक ने हानिरक्षाधारी की

क्षतिपूर्ति की है केवल उसी सीमा तक ही हानिरक्षक के तीसरे पक्षकारों के विरुद्ध अधिकार होते हैं।

(4) अनुबन्ध के बाहर क्षति होने की दशा : यदि हानिरक्षाधारी को किसी ऐसे कारण अथवा कारणों से क्षति पहुँचती है जो हानिरक्षा अनुबन्ध की सीमा से बाहर है तो ऐसे अधिकार है कि वह क्षतिपूर्ति न करें।

3.4 प्रतिभूति अथवा गारण्टी के अनुबन्ध (Contracts of Guarantee) :

भारतीय अनुबन्ध की धारा 126 के अनुसार, "प्रतिभूति अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें एक व्यक्ति, किसी दूसरे व्यक्ति को किसी तीसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा में उसके वचन का निष्पादन करने तथा उसके दायित्वों को पूरा करने का वचन देता है।" ("A contract of guarantee is a contract to perform the promise or discharge the liability of a third person in case of his default"-Sec.126)

प्रतिभूति अनुबन्ध में तीन पक्षकार होते हैं – ऋणदाता (Creditor), प्रतिभू (Surety) तथा मूलऋणी (Principal Debtor) जो व्यक्ति प्रतिभूति/गारण्टी देता है उसे प्रतिभू (Surety/Guarantor) कहा जाता है जिसकी ओर से या जिसकी त्रुटि के लिए प्रतिभूति दी जाती है उसे मूल ऋणी (Principal Debtor) कहा जाता है और जिसको प्रतिभूति दी जाती है उसे ऋणदाता (Creditor) कहा जाता है।

उदाहरण (Example) –

X, Y से 50,000 रुपये उधार मांगता है। Z, Y से कहता है यह राशि इसे ऋण के रूप में दो तथा यदि वह भुगतान नहीं करेगा तो मैं अपनी राशि का भुगतान कर दूँगा। Y, X को यह राशि दे देता है। यहाँ X मूल ऋणी (Debtor), Y ऋणदाता (Creditor) तथा Z प्रतिभू (Surety) है।

गारण्टी अनुबन्ध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को ऋण दिलाना, उधार माल दिलवाना या नौकरी दिलवाना आदि हो सकते हैं। सामान्यत: इन अनुबन्धों में किसी पक्षकार के अच्छे आचरण/व्यवहार की गारण्टी दी जाती है। प्रतिभूति अनुबन्ध मौखिक अथवा लिखित हो सकते हैं परन्तु इसका लिखित होना अधिक उचित माना गया है। अंग्रेजी अधिनियम के अनुसार गारण्टी के अनुबन्ध हमेशा लिखित रूप में होने आवश्यक है।

उदाहरण (Example) –

A, B से कहता है कि वह C को अपनी (Factory) में रोकड़िये (Cashier) के पद पर नौकरी दे दे तथा यह C के सभी कार्यों के लिए जिम्मेदार होगा। यह गारण्टी के अनुबन्ध का एक रूप है।

3.4.1 प्रतिभूति अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण (Essential Elements of a Contract of Guarantee)

गारण्टी का अनुबन्ध एक विशेष प्रकार का अनुबन्ध है। अत: इसमें एक वैध अनुबन्ध के सभी आवश्यक तत्व विद्यमान होने चाहिए। जैसे अनुबन्ध करने की क्षमता, स्वतन्त्र सहमति, वैध उद्देश्य एवं प्रतिफल इत्यादि। धारा 126 के अनुसार गारण्टी के अनुबन्ध में निम्नलिखित लक्षणों का होना अनिवार्य है।

(1) तीन पक्षकार (Three Parties) : एक गारण्टी के अनुबन्ध में कम से कम तीन पक्षकारों का होना आवश्यक है। ये पक्षकार ऋणदाता, ऋणी तथा प्रतिभू के रूप में होते हैं जो व्यक्ति गारण्टी देता है उसे प्रतिभू (Surety), जिसके बारे में गारण्टी दी जाती है उसे ऋणी तथा जिसे गारण्टी दी जाती है उसे ऋणदाता कहा जाता है।

(2) तीन अनुबन्ध (Three Contracts) : गारण्टी के अनुबन्ध में एक साथ तीन अनुबन्ध होते हैं–

(i) ऋणदाता और ऋणी के बीच (Contract between Creditor and Debtor)

(ii) ऋणदाता तथा प्रतिभू के बीच (Contract between Creditor and Surety)

(iii) प्रतिभू तथा मूल ऋणी के बीच (Contract between Surety and Debtor)

(3) प्रतिभू का दायित्व गौण (Secondary Liability of Surety) : गारण्टी के अनुबन्ध में प्रतिभू का दायित्व गौण (Secondary) होता है अर्थात् प्राथमिक पहला दायित्व तो मूल ऋणी का होता है। यदि यह अपना दायित्व पूरा नहीं करता तो प्रतिभू को यह दायित्व पूरा करना पड़ता है।

उदाहरण (Example) –

X, Y को Z की गारण्टी पर 10,000 रुपये का माल एक महीने के लिए उधार देता है। एक महीने के समाप्त हो जाने पर यदि Y, X को भुगतान कर देता है तो Z का दायित्व उत्पन्न नहीं होगा। यदि Y एक महीने के बाद भी यह भुगतान नहीं करता तो X, Z को इस राशि की माँग कर सकता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि प्राथमिक दायित्व X का है तथा Y का दायित्व गौण है।

(4) प्रधान/मूल ऋण का अस्तित्व होना (Existence of Principal Debt) : गारण्टी के अनुबन्ध में हम यह मानकर चलते हैं कि वहाँ पहले से ही कानून द्वारा प्रवर्तनीय कोई दायित्व विद्यमान है। यहाँ ऐसे दायित्व का अस्तित्व में होना आवश्यक है जिसको कानून से प्रवर्तनीय (enforce) करवाया जा सकता है। यदि ऐसा दायित्व विद्यमान नहीं है तो प्रतिभूति का अनुबन्ध नहीं हो सकता। अत: इस प्रकार के ऋण के बारे में दी गई प्रतिभूति जो व्यर्थ है या अवधि वर्जित हो चुका है, प्रतिभू के लिए कोई दायित्व उत्पन्न नहीं करती।

उदाहरण (Example) –

C द्वारा अवधि वर्जित ऋण के लिए A, B को गारन्टी देता है। यह गारण्टी का अनुबन्ध वैध नहीं है क्योंकि B तथा C के बीच का मुख्य दायित्व कानून द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। यहाँ यदि A ऋण का भुगतान कर देता है तो भी वह C से यह राशि वसूल नहीं कर सकता।

(5) प्रतिफल (Consideration) : गारण्टी के अनुबन्ध में एक वैध अनुबन्ध की तरह सभी आवश्यक लक्षण विद्यमान होने चाहिए परन्तु कई बार यह प्रश्न उठता है कि प्रतिभू (Surety) और मूल ऋणी के बीच प्रतिफल कहाँ है? इसके उत्तर में यही कहा जाता है कि गारण्टी के अनुबन्ध में प्रतिभू के लिए प्रतिफल अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान होता है।

धारा 127 गारन्टी के अनुबन्ध में प्रतिफल की स्पष्ट व्याख्या करती है। इसके अनुसार मूल ऋणी के लाभ के लिए किया गया कोई कार्य या दिया गया कोई वचन प्रतिभू द्वारा गारन्टी देने के लिए पर्याप्त प्रतिफल होगा।

(6) मिथ्या वर्णन या छुपाव नहीं (No Mispresentation of Concealment) : गारण्टी के अनुबन्ध परम सद्भावना वाले अनुबन्ध (Contracts of Utmost Faith) नहीं होते और इसलिए अनुबन्ध करने से पहले मूल ऋणा या ऋणदाता को सभी आवश्यक तथ्य प्रतिभू के सामने प्रकट करने आवश्यक नहीं होते। परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में ऋणदाता तथा मूल ऋणी का यह कर्त्तव्य होता है कि वह प्रतिभू को उन सभी तथ्यों की सूचना दे जिससे प्रतिभू का दायित्व प्रभावित होता है।

उदाहरण (Example) –

X, Y को धन वसूल करने के लिए अपनी फाइनेंस कम्पनी में क्लर्क के पद पर नियुक्त करता है। Y वसूल किए गए धन का सही हिसाब देने में असमर्थ रहता है। इसके पश्चात् X, Y को सही हिसाब देने के लिए Z की गारण्टी मांगता है। Y, Z से यह गारण्टी दिलवा देता है। यहाँ X और Y दोनों में से कोई पूर्व तथ्यों की जानकारी नहीं देते। यह प्रतिभूति अनुबन्ध वैध नहीं माना जाएगा क्योंकि ऋणदाता ने प्रतिभू से जानबूझकर तथ्यों को छिपाया है, हाँ Z स्वयं भी अपने दायित्व से मुक्त हो जाएगा।

(7) अनुबन्ध करने की क्षमता (Contractual Capacity) : अन्य सामान्य अनुबन्धों की तरह प्रतिभूति अनुबन्ध में भी पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए। यदि अनुबन्ध में प्रतिभू नाबालिग है तो स्वाभाविक है कि यह अनुबन्ध व्यर्थ होगा। यदि एक प्रतिभूति अनुबन्ध में मूल ऋणी (Debtor) नाबालिग है तो प्रतिभूति अनुबन्धों में होने वाले तीन अनुबन्धों में से दो व्यर्थ हो जाते हैं जिसमें नाबालिग मूल ऋणी शामिल है। मूल ऋणी और ऋणदाता के बीच का अनुबन्ध, मूल ऋणी और प्रतिभू के बीच का अनुबन्ध परन्तु तीसरा अनुबन्ध (ऋणदाता और प्रतिभू के बीच) वैध होता है परन्तु वह प्रतिभूति अनुबन्ध न होकर एक सामान्य ऋण का अनुबन्ध माना जाता है।

3.4.2 गारण्टी सम्बन्धी अन्य विषय (Other Rules as to Guarantee) :

(1) मूल ऋणों की जानकारी के बिना दी गई प्रतिभूति : हानिरक्षा अनुबन्ध के विपरीत गारण्टी अनुबन्ध में तीन पक्षकारों का होना आवश्यक होता है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कोई व्यक्ति के लिए उसकी जानकारी या उसके सम्मिलित हुए बगैर प्रतिभू हो सकता है या नहीं। (2) परिश्रमाराम मरक्कार बनाम बेनीश्रान्स एण्ड कं. के बाद में मद्रास उच्च न्यायालय ने इस सम्बन्ध में निर्णय दिया है –

(i) A मूल ऋणी है।

(ii) B ऋणदाता अथवा माल का विक्रेता है।

(iii) C प्रतिभू का गारण्टर (Guarantor) है।

A ने B के साथ माल खरीदने का अनुबन्ध किया। C ने A के द्वारा अनुबन्ध के उचित निष्पादन की गारण्टी दी (बिना मूल ऋणों A की जानकारी के)। B और C के मध्य हुए अनुबन्ध में A सम्मिलित नहीं था और A तथा B के बीच हुए गारण्टी अनुबन्ध में C सम्मिलित नहीं था। A द्वारा अनुबन्ध को खण्डन करने के परिणामस्वरूप C को B के लिए क्षतिपूर्ति देनी पड़ेगी। बाद में C ने A के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया परन्तु न्यायालय ने C का वाद रद्द कर दिया।

3.5 हानिरक्षा तथा प्रतिभूति अनुबन्ध में अन्तर (Difference between Contract of Indemnity and Guarantee)

अन्तर का आधार (Basis of Difference)	हानिरक्षा अनुबन्ध (Contract of Indemnity)	प्रतिभूति अनुबन्ध (Contract of Guarantee)
परिभाषा (Definition)	Sec. 124 के अनुसार इसमें वचनदाता वचनग्रहीता को ऐसी सभी हानियों से बचाने का वचन देता है जो	इसमें गारण्टी देने वाला केवल तीसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा में उसके दायित्व को पूरा करने के लिए बाध्य होता है।

	वचनग्रहीता को वचनदाता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचती है।	
उद्देश्य (Objective)	इसका उद्देश्य अथवा भविष्य की अनिश्चित घटना से बचना होता है।	इसका उद्देश्य दूसरे व्यक्ति के ऋण के भुगतान का उत्तरदायित्व लेना है।
पक्षकारों की संख्या (No. of parties)	इसमें केवल दो पक्षकार होते हैं हानिरक्षक तथा हानिरक्षाधारी।	इसमें तीन पक्षकार होते हैं मूल ऋणी, ऋणदाता एवं प्रतिभू।
अनुबन्धों की संख्या (No. of Contracts)	इसमें केवल हानिरक्षक एवं हानि रक्षाधारी के बीच एक अनुबन्ध होता है।	इसमें तीन अनुबन्ध शामिल होते हैं (i) मूल ऋणी और ऋणदाता के बीच। (ii) मूल ऋणी और प्रतिभू के बीच। (iii) मूलऋणी और प्रतिभू के बीच।
दायित्व की प्रकृति (Nature of Liability)	इसमें हानिरक्षक का दायित्व प्राथमिक होता है।	इसमें प्रतिभू का दायित्व गौण एवं संयोगिक होता है (Secondary and contingent) होता है। प्राथमिक दायित्व मूल ऋणी का होता है।
प्रतिफल (Consideraration)	इसमें हानिरक्षक का प्रतिफल प्रत्यक्ष रूप में होता है, अर्थात उसे क्षतिपूर्ति करने का प्रत्यक्ष प्रतिफल प्राप्त होता है।	इसमें प्रतिभू का प्रतिफल प्रत्यक्ष रूप में न होकर अप्रत्यक्ष रूप में होता है। यहाँ ऋणदाता द्वारा मूल ऋणी को दिया गया ऋण ही प्रतिभू का प्रतिफल माना जाता है।
क्षेत्र (Scope)	इसका क्षेत्र सीमित है क्योंकि इसमें प्रतिभूति अनुबन्ध शामिल नहीं है।	इसका क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत है क्योंकि गारण्टी के अनुबन्ध में हानिरक्षा अनुबन्ध भी शामिल होते हैं।
वाद का अधिकार (Right to Sue)	इसमें हानिकारक अपने दायित्व की पूर्ति करने के बाद, तीसरे पक्षकारों के विरुद्ध अपने नाम से वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता। वह यह वाद हानिरक्षाधारी के नाम से प्रस्तुत कर सकता है।	इसमें प्रतिभू ऋणदाता को भुगतान करने के पश्चात् अपने नाम से मूल ऋणी पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।
अनुबन्ध करने की क्षमता (Contractual Capacity)	इसमें शामिल दोनों पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए।	इसमें शामिल तीनों पक्षकारों में से मूल ऋणी में अनुबन्ध करने की क्षमता न होने पर भी अनुबन्ध वैध होते हैं।

स्पष्ट अथवा गर्भित (Expressed or Implied)	हानिरक्षा के अनुबन्ध स्पष्ट अथवा गर्भित दोनों ही तरह के हो सकते हैं।	प्रतिभूति अनुबन्ध का स्पष्ट होना आवश्यक है। यह गर्भित नहीं होते।
पक्षकारों द्वारा निवेदन (Request by Parties)	क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में हानिरक्षक अपनी इच्छा से हानिरक्षाधारी को विशेष हानियों से बचाने का वचन देता है।	गारण्टी के अनुबन्ध में प्रतिभू द्वारा गारण्टी अपनी इच्छा से न होकर मूल ऋणी के निवेदन या प्रार्थना पर दी जाती है।
ऋण (Loan)	इसमें सामान्यत: ऋण सम्बन्धी अनुबन्ध शामिल नहीं होते।	इसमें मुख्य रूप से अनुबन्धों का आधार ऋण की जमानत ही होता है।

3.6 प्रतिभूति के भेद (Kinds of Contracts) :

गारण्टी के अनुबन्धों के विभिन्न प्रकारों को अग्रलिखित चार्ट द्वारा दिखाया जा सकता है –

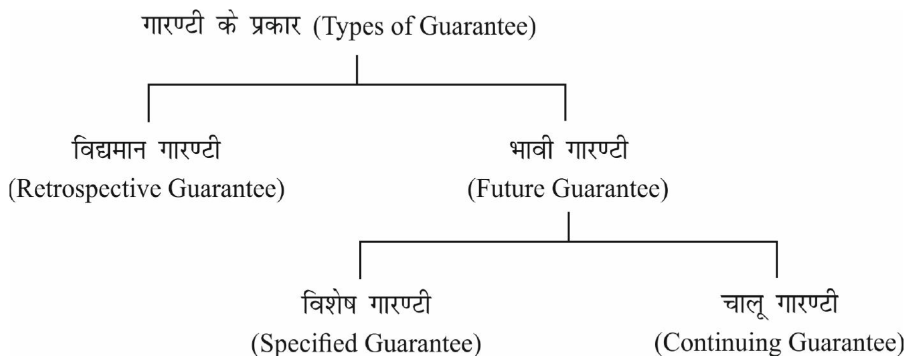

3.6.1 विद्यमान गारण्टी (Retrospective Guarantee) : जब कोई गारण्टी विद्यमान ऋण के सम्बन्ध में दी जाती है तो विद्यमान गारण्टी कहलाती है। उदाहरण के लिए रमेश को 20,000 रुपये 1 अप्रैल 1994 को उधार दिये जिसका भुगतान 1 मई 1995 को करेगा। वह महेश, रमेश को गारण्टी देता है कि सुरेश महीने के अन्दर भुगतान कर देता अन्यथा यह भुगतान करेगा। यह महेश द्वारा दी गई गारण्टी विद्यमान कहलाती है।

3.6.2 भावी गारण्टी (Future Gurantee) : जब गारण्टी भावी ऋण के सम्बन्ध में होती है तो वह भावी प्रतिभूति कहते हैं। भावी प्रतिभूति के दो भेद होते हैं –

(a) विशेष प्रतिभूति : जब प्रतिभूति एक विशेष ऋण के लिए दी जाती है तो उसको विशेष प्रतिभूति कहते हैं। विशेष ऋण का भुगतान हो जाने पर प्रतिभूति का उत्तरदायित्व स्वत: ही समाप्त हो जाता है।

(b) चालू प्रतिभूति : चालू प्रतिभूति अनेक विस्तृत भावी ऋणों के लिए दी जाती है जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न और अलग होती है। ऐसी प्रतिभूति जो व्यवहारों की एक श्रृंखला तक फैली होती है चालू प्रतिभूति कहते हैं।

उदाहरण : 'अ' किसी चाय के व्यापारी 'ब' को उस चाय के लिए जिसकी पूर्ति वह 'स' को समय पर करता रहेगा। 100 पौण्ड के भुगतान की प्रतिभूति देता है। 'ब' 'स' को 100 पौण्ड से अधिक कीमत की चाय देता है और 'स' 'ब' को इसका भुगतान कर देता है। इसके बाद 'ब' 'अ' को 200 पौण्ड

की चाय देता है। 'स' इसका भुगतान नहीं करता। 'अ' द्वारा दी गई प्रतिभूति चालू प्रतिभूति थी और और इसके अनुसार वह 'ब' के प्रति 100 पौण्ड तक की रकम के लिए उत्तरदायी है।

3.6.3 चालू प्रतिभूति का खण्डन (Revocation of Continuing Guarantee) : चालू प्रतिभूति का खण्डन निम्नलिखित दो प्रकार से किया जा सकता है –

(i) सूचना द्वारा (By Notice) : चालू प्रतिभूति प्रतिभू द्वारा ऋणदाता को सूचना देकर भावी व्यवहारों के सम्बन्ध में किसी भी समय खण्डित की जा सकती है। प्रतिभूति के खण्डित कर देने पर प्रतिभू भावी व्यवहारों के लिए उत्तरदायी नहीं रहता परन्तु यह उन व्यवहारों के लिए दायी रहता है जो ऐसी सूचना दिये जाने से पूर्व ऋणदाता और मूल ऋणी के बीच पूरे हो चुके हैं।

(ii) प्रतिभू की मृत्यु द्वारा (By Surety's Death) : जब कोई विपरीत अनुबन्ध न हो तो प्रतिभू की मृत्यु होने पर जहाँ तक भावी व्यवहारों का सम्बन्ध हो चालू प्रतिभूति की समाप्ति हो जाती है।

परन्तु प्रतिभू की मृत्यु के पहले के व्यवहारों के लिए प्रतिभू का प्रतिनिधि उत्तरदायी होता है। अंग्रेजी राजनियम के अनुसार चालू प्रतिभूति के लिए प्रतिभू की मृत्यु की सूचना ऋणदाता को मिलनी चाहिए परन्तु भारत में ऐसी सूचना की कोई आवश्यकता नहीं होती।

3.6.4 विशिष्ट एवं चालू गारण्टी में अन्तर
(Difference between Specific and Continuing Guarantee) :

अन्तर का आधार (Base of Difference)	विशिष्ट गारण्टी (Specific Guarantee)	चालू गारण्टी (Continuing Guarantee)
1. परिभाषा (Definition)	जब किसी विशेष ऋण अथवा वचन के लिए प्रतिभूति दी जाती है तो उसे विशिष्ट प्रतिभूति कहते हैं।	वह प्रतिभूति जो कि व्यवहारों की एक श्रृंखला तक विस्तृत होती है चालू प्रतिभूति कहलाती है।
2. व्यवहारों की संख्या (Specific Guarantee)	इसमें गारण्टी के अन्तर्गत केवल एक ही व्यवहार शामिल होता है।	इसमें गारण्टी के अन्तर्गत व्यवहारों की श्रृंखला चलती है अर्थात् एक से अधिक व्यवहार होते हैं।
3. दायित्व की उत्पत्ति (Origin of Liability)	इसमें निश्चित व्यवहार के पूरा न किये जाने पर प्रतिभू का दायित्व उत्पन्न होता है।	इसमें व्यवहारों की श्रृंखला में से किसी भी एक व्यवहार के पूरा न होने पर प्रतिभू का दायित्व उत्पन्न होता है।
4. खण्डन (Revocation)	सामान्य परिस्थितियों में विशिष्ट गारण्टी का खण्डन नहीं किया जा सकता।	चालू गारण्टी का खण्डन विभिन्न विधियों द्वारा नियमानुसार किया जा सकता हो।
5. गारण्टी का अन्त (Termination of Gaurantee)	इसमें निश्चित व्यवहार के पूरा होते ही गारण्टी का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।	चालू प्रतिभूति का अन्त सभी व्यवहारों के सम्पन्न होने पर अथवा प्रतिभू द्वारा प्रतिभूति का खण्डन कर दिये जाने पर होता है।

3.7 प्रतिभू का उत्तरदायित्व (Liability of Surety) :

प्रतिभू का उत्तरदायित्व उसी दशा में उत्पन्न होता है जबकि मूल ऋणी भुगतान नहीं करता किन्तु जैसे ही मूल ऋणी भुगतान करने में त्रुटि करता है उसी समय प्रतिभू उसी प्रकार उत्तरदायी हो जाता है जैसे कि वह मूल ऋणी हो। वास्तव में प्रतिभू को ऋणदाता से यह कहने का भी कोई अधिकार नहीं है कि वह पहले मूल ऋणी के प्रति सभी उपचार का अन्त कर ले। यही नहीं प्रतिभू को मूल ऋणी के त्रुटि करने के सम्बन्ध में ऋणदाता से नोटिस पाने का कोई अधिकार नहीं है। मूल ऋणी भुगतान करता है अथवा नहीं यह देखने का काम प्रतिभू का है। अत: ऋणदाता मूल ऋणी पर वाद किये बिना प्रतिभू पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(i) प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के साथ सहविस्तृत होता है : जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत बात न हो, प्रतिभू का उत्तरदायित्व मूल ऋणी के उत्तरदायित्व के साथ सह-विस्तृत होता है। उदाहरण के लिए 'स' द्वारा स्वीकृत विनिमय पत्र के लिए 'अ', 'ब' को भुगतान की प्रतिभूति देता है। 'स' विनिमय पत्र का भुगतान नहीं करता। 'अ' केवल विनिमय पत्र की धनराशि के लिए नहीं बल्कि ब्याज और दूसरे रूपयों के लिए भी उत्तरदायी है।

(ii) प्रतिभू प्रतिभूति का अनुबन्ध करते समय अपने दायित्व को सीमित कर सकता है: उदाहरण के लिए यदि मूल ऋणी 2000 रुपये के लिए अपने ऋणदाता के लिए उत्तरदायी है और यदि प्रतिभू ने केवल 1000 रूपये के लिए ही प्रतिभूति दी है तो प्रतिभू केवल 1000 रूपये के लिए ही उत्तरदायी होगा। इसी कारण प्रतिभू को विशेष सुविधा वाला ऋणी भी कहा जाता है।

(iii) संयुक्त रूप से किये गये अनुबन्ध (Liability of two persons) : जब दो व्यक्ति संयुक्त रूप से ऋण लेते हैं और उनमें से एक का दायित्व प्रतिभू के रूप में होता है और इस बात का ज्ञान ऋणदाता को भी होता है। ऐसी दशा में ऋणदाता अपने ऋण को वसूल करने के लिए दोनों में से किसी पर भी वाद प्रस्तुत कर सकता है और अपना सारा धन वसूल कर सकता है। यह और बात है कि दोनों इस राशि को आपस में समायोजित कर ले। उदाहरण के लिए सीता गीता एक संयुक्त एवं पृथक् प्रतिज्ञा पत्र सविता के लिए लिखते हैं। सीता बीच में से प्रतिभू हो जाती है और इस तथ्य का ज्ञान सविता को हो जाता है। सविता द्वारा सीता पर वाद प्रस्तुत करने पर रक्षा का कोई अधिकार नहीं हो सकता है।

(iv) जब मूल ऋणी दिवालिया हो जाता है (when Principal Debtor becomes Insolvent) : जब मूल ऋणी दिवालिया घोषित हो जाता है ऐसी परिस्थिति में प्रतिभू पर पूरी रकम के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ रिंकू, टिंकू से 10,000 रूपये का एक ऋण लेता है और मिंकू इसकी गारण्टी देता है। रिंकू दिवालिया घोषित हो जाता है तो ऐसी दशा में टिंकू मिंकू से पूरा ऋण वसूल कर सकता है।

3.8 प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति (Discharge of Surety) :

प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति को निम्न चार्ट द्वारा समझाया जा सकता है।

प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति

1	2	3	4	5	6	7	8	9
प्रतिभू द्वारा प्रतिभूति	प्रतिभू की मृत्यु होने पर	नया अनुबंध होने की दशा में	अनुबंध की शर्तों में परिवर्तन से	मूल ऋणी के मुक्त किया जाने पर	मूल ऋणी से समझौता	ऋणदाता किसी कार्य या भूल से	ऋणदाता द्वारा जमानत हो जाने पर	गारण्टी के अवैध हो जाने पर

एक प्रतिभू अपने दायित्व से निम्नलिखित दशाओं से मुक्त हो सकता है –

(1) प्रतिभू द्वारा प्रतिभूति अनुबन्ध के खण्डन द्वारा (by Revocation of Contract) : यह हम जानते हैं कि गारण्टी दो प्रकार की होती है – विशिष्ट तथा चालू। विशिष्ट गारण्टी की स्थिति में यदि ऋण दिया जा चुका है तो उसका खण्डन नहीं किया जा सकता।

उदाहरण –

A, B द्वारा C से लिए गए 10,000 रूपये के ऋण की गारण्टी देता है। C, B को यह राशि उधार दे देता है तो इस दशा में A गारण्टी का खण्डन नहीं कर सकता, परन्तु यदि अभी C ने B को उधार की राशि नहीं दी है तो A; C को सूचना देकर गारण्टी के अनुबन्ध का खण्डन कर सकता है।

धारा 130 के अन्तर्गत चालू प्रतिभूति (Continuing Guarantees) के खण्डन के बारे में प्रावधान है कि चालू प्रतिभूति की स्थिति में प्रतिभू भावी व्यवहारों के सम्बन्ध में किसी भी समय ऋणदाता को सूचना देकर अपनी प्रतिभूति का खण्डन कर दायित्व से मुक्त हो सकता है। खण्डन की सूचना के बाद होने वाले व्यवहारों के लिए वह उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। परन्तु यह बात ध्यान रखने योग्य है कि प्रतिभू उन व्यवहारों के लिए उत्तरदायी रहता है जो खण्डन की सूचना दिये जाने से पूर्व ऋणदाता और ऋणी के बीच पूरी हो चुके हैं।

उदाहरण –

A, B द्वारा अगले दो महीनों में खरीदे जाने वाले माल के लिए 50,000 रुपये तक की गारण्टी C को देता है। अगले एक महीने में B, C से 25,000 रुपये माल खरीद लेता है। इस समय A, C को सूचना देकर प्रतिभू समाप्त कर देता है। ऐसी स्थिति में A आगे के व्यवहारों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। परन्तु वह पहले महीने में हो चुके 25,000 रूपये के व्यवहार के लिए उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होगा। अर्थात् यदि B, C को यह भुगतान नहीं करता तो C इस A से वसूल कर सकता है।

(2) **प्रतिभू की मृत्यु होने पर (By Surety's Death) :** धारा 131 के अनुसार यदि कोई विपरीत अनुबन्ध न हो तब प्रतिभू की मृत्यु से भावी व्यवहारों के सम्बन्ध में चालू प्रतिभूति समाप्त हो जाती है, चाहे ऋणदाता को प्रतिभू की मृत्यु की सूचना हो या न हो लेकिन मृत्यु से पूर्व जो व्यवहार किये जा चुके हैं उसके लिए प्रतिभू की सम्पत्ति उत्तरदायी होती है। यदि ऋणदाता प्रतिभू की मृत्यु के बाद बिना मृत्यु की जानकारी के मूल ऋणों से कोई व्यवहार करता है तो मृतक प्रतिभू की सम्पत्ति ऐसे व्यवहार के लिए उत्तरदायी नहीं होती।

(3) **नया अनुबन्ध होने की दशा में (By Novation) :** धारा 62 के अनुसार जब गारण्टी अनुबन्ध के तीनों पक्षकार किसी विद्यमान/वर्तमान गारण्टी अनुबन्ध के स्थान पर नया गारण्टी अनुबन्ध कर लेते हैं तो पुराना गारण्टी का अनुबन्ध स्वयं ही समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में पुराने गारण्टी के अनुबन्ध के सम्बन्ध में प्रतिभू का दायित्व समाप्त हो जाएगा।

(4) **अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन से (By Variance in the Terms of the Contract) :** धारा 133 के अनुसार यदि प्रतिभू की सहमति के बिना मूल ऋणी और ऋणदाता गारण्टी के अनुबन्ध में कोई परिवर्तन करते हैं तो चाहे वह परिवर्तन प्रतिभू के हित में भी क्यों न हो, प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। लेकिन यदि प्रतिभू ऐसे परिवर्तन के लिए सहमती दे देता है तो वह अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होता। यहाँ यह सिद्ध करने का भार कि प्रतिभू ने अपनी सहमति दे दी थी– ऋणदाता को होता है।

(5) **मूल ऋणी के मुक्त किये जाने पर (By Release or Discharge of Principal Debtor) :** धारा 134 के अनुसार यदि ऋणदाता और मूल ऋणी कोई ऐसा अनुबन्ध करते हैं जिसके द्वारा

मूल ऋणी का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है अथवा यदि ऋणदाता कोई ऐसा कार्य या भूल करता है जिसका वैधानिक परिणाम यह होता है कि मूल ऋणी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है तो ऐसी दशा में प्रतिभू के उत्तरदायित्व का अन्त हो जाता है।

(6) मूल ऋणी से समझौता (Agreement with Principal Debtor) : धारा 135 के अनुसार यदि ऋणदाता और मूल ऋणी प्रतिभू की सहमती के बिना –

(i) ऐसा सम्बन्ध कर लेते हैं जिसके द्वारा ऋणदाता मूल ऋणी से समझौता कर देता है अथवा

(ii) उसको अधिक समय देने का वचन देता है।

(iii) उस पर वाद प्रस्तुत न करने का वचन देता है।

तो प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। परन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होता। ये परिस्थितियाँ धारा 135 में दिये गए तीन नियमों से सम्बन्धित अपवाद है जिनका उल्लेख धारा 136, 137 व 138 में किया गया है।

(i) धारा 136 के अनुसार यदि मूल ऋणी को अतिरिक्त समय देने का अनुबन्ध ऋणदाता किसी अन्य व्यक्ति से करता है, मूल ऋणी के साथ नहीं तो प्रतिभू का दायित्व समाप्त नहीं होता।

(ii) धारा 137 के अनुसार मूल ऋणी पर वाद प्रस्तुत करने अथवा उसके विरुद्ध कोई अन्य कार्यवाही करने से ऋणदाता का रूके रहना प्रतिभू के दायित्व को कम नहीं करता।

(iii) धारा 138 के अनुसार यदि एक गारण्टी के अनुबन्ध में सहप्रतिभू (Co-Surety) है और ऋणदाता उनमें से किसी एक को मुक्त कर देता है तो उससे शेष प्रतिभूओं के दायित्व समाप्त नहीं हो जाते। इस तरह से मुक्त किये गए प्रतिभू का दायित्व शेष प्रतिभूओं के प्रति समाप्त नहीं होता।

(7) ऋणदाता के किसी कार्य या धूल से जिससे प्रतिभू के अधिकार में कमी हो जाती है (By Creditor's Act or Omission Impairing Surety's Remedy) : धारा 139 के अनुसार यदि ऋणदाता कोई ऐसा कार्य करता है तो प्रतिभू के अधिकारों के असंगत है अथवा वह किसी ऐसे कार्य को करने से भूल करता है जिसका करना प्रतिभू के कर्त्तव्यों के अनुसार आवश्यक है और जिससे मूल ऋणी के विरुद्ध प्रतिभू के प्रति उसके अधिकारों में कमी हो जाती है तो ऐसी दशा में प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

(8) ऋणदाता द्वारा जमानत खो जाने पर (By Loss of Security by Creditor) : धारा 141 के अनुसार प्रतिभूति अनुबन्ध में यदि हम मूल ऋणी प्रतिभू की गारण्टी के साथ-साथ कोई सम्पत्ति/मूल्यवान वस्तु ऋणदाता के पास जमानत के रूप में रखता है तो प्रतिभू को ऋणदाता से वह जमानत/सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार होता है। यदि ऋणदाता वह सम्पत्ति को खो देता है या प्रतिभू की जानकारी/सहमति के बिना उसे मूल ऋणी को वापिस कर देता है तो प्रतिभू का दायित्व उस सम्पत्ति के मूल्य के बराबर कम हो जाता है।

(9) गारण्टी के अवैध हो जाने पर (By Invalidation of Guarantee) : ऋणदाता द्वारा प्राप्त की गई गारण्टी यदि व्यर्थ/अवैध सिद्ध हो जाती है तो प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। निम्नलिखित परिस्थितियों में ऐसा हो सकता है –

(i) मिथ्यावर्णन द्वारा गारण्टी प्राप्त करने पर (Guarantee obtained by Misrepresentation) : धारा 142 के अनुसार जब ऋणदाता द्वारा अथवा उसकी जानकारी तथा सहमति से गारण्टी के अनुबन्ध में किसी महत्त्वपूर्ण भाग के बारे में मिथ्यावर्णन किया जाता है और गारण्टी प्राप्त कर ली जाती है तो ऐसी गारण्टी अवैध हो जाती है।

(ii) छिपाव/कपट द्वारा प्रतिभूति प्राप्त करने पर (Guarantee obtained by Fraud or Concealment) : धारा 143 के अनुसार यदि ऋणदाता गारण्टी के अनुबन्ध के बारे में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का छुपाव करता है या उनके सम्बन्ध में प्रतिभू द्वारा पूछे जाने पर मौन रहता है तो ऐसी प्रतिभूति अमान्य व अवैध होती है तथा प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

(iii) सहप्रतिभू द्वारा गारण्टी न देने पर (By Refusal by Co-Surety) : धारा 144 के अनुसार जब कोई व्यक्ति इस शर्त पर गारण्टी देता है कि ऋणदाता गारण्टी के अन्तर्गत मूल ऋणी को तब तक कोई ऋण नहीं देगा जब तक कि कोई दूसरा व्यक्ति सहप्रतिभू (co-surety) न बन जाए यदि वहाँ कोई दूसरा व्यक्ति सहप्रतिभू नहीं बनता तो पहले वाले व्यक्ति द्वारा दी गई प्रतिभूति वैध नहीं मानी जाती और वह व्यक्ति प्रतिभू के रूप में अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

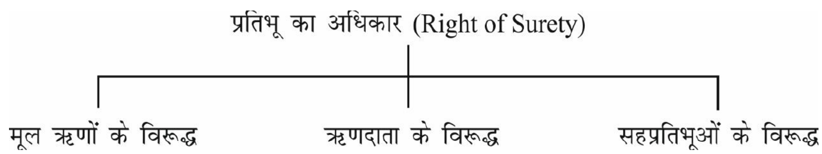

(a) मूल ऋणी के विरूद्ध अधिकार (Right against Principal Debtors) : यदि मूल ऋणी अपने वचन के निष्पादन करने में त्रुटि करता है और प्रतिभू ऋण चुका देता है तो उसे वे सब अधिकार हो जाते हैं जो कि ऋणदाता के मूल ऋणी के विरुद्ध प्राप्त होते हैं, यदि मूल ऋण को बचे हुए माल को ऋणदाता को मार्ग में रोकने का अधिकार प्राप्त है तो प्रतिभू को यह अधिकार प्राप्त होगा अथवा ऋणदाता को यदि मूल ऋणी के दिवालिया होने की दशा में उसकी सम्पत्ति के आनुपातिक भाग पाने का अधिकार है तो प्रतिभू को भी यह अधि कार प्राप्त होगा। (Sec. 140)

(b) हानिरक्षा का अधिकार (Right of Indemnity) : प्रत्येक प्रतिभूति अनुबन्ध में मूल ऋणी द्वारा प्रतिभू की हानि रक्षा का वचन गर्भित होता है। प्रतिभू वह मूल ऋणी से समस्त धनराशि, व्यय आदि को प्राप्त करने का अधिकार रखता है जो प्रतिभूति अनुबन्ध के अधीन उसने उचित ढंग से चुकाई है। किन्तु किसी भी ऐसी धनराशि को प्राप्त करने का उसका कोई अधिकार नहीं है जो उसने त्रुटिपूर्ण ढंग से चुकाई है। (Sec. 145)

(2) ऋणदाता के विरूद्ध अधिकार (Right against the Creditors) : प्रतिभू को ऋणदाता के विरूद्ध एक ही अधिकार प्राप्त है -

(i) प्रतिभू का लाभ पाने का अधिकार : प्रतिभू (Surety) को ऐसी प्रतिभू का लाभ प्राप्त करने का अधिकार है जो ऋादाता के पास मूल ऋणी के विरूद्ध उस समय थी, जबकि प्रतिभूति का अनुबन्ध किया गया था चाहे प्रतिभू को ऐसी प्रतिभूति के होने का पता हो या न हो। यदि ऋणदाता ऐसी प्रतिभूति खो देता है अथवा वह प्रतिभूति की कीमत की सीमा तक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

उदाहरण-

सुरेश, रमेश को अशोक की प्रतिभूति पर 5000 रुपये उधार देता है। सुरेश उस 5000 रुपये के लिए एक और प्रतिभूति रमेश का फर्नीचर बन्धक के रूप में ले लेता है। सुरेश बन्धक को रद्द कर देता है, रमेश दिवालिया हो जाता है और अशोक पर उसकी प्रतिभूति के अनुसार वाद प्रस्तुत करता है। अशोक फर्नीचर की कीमत की रकम तक के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

(3) सहप्रतिभूतियों के विरुद्ध अधिकार (Right against Co-Sureties) :

(A) सहप्रतिभू बराबर अंशदान के लिए दायी है, यदि दो या अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से किसी एक ऋण या कर्त्तव्य के लिए प्रतिभू है तो वे किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, सम्पूर्ण ऋण अथवा उसके उस भाग के लिए जो मूल ऋणी द्वारा चुकायी नहीं गई है आपस में बराबर-बराबर भाग चुकाने के लिए दायी है। उसके द्वारा एक अथवा अनेक अनुबन्धों के अधीन अपने को बाध्य करना अथवा अनुबन्ध करते समय उन्हें दूसरे प्रतिभूओं के होने का पता होना या न होना कोई महत्त्व नहीं रखता। उदाहरणार्थ A, B और C, E को उधार दिये गए 6000 रुपये की रकम के लिए D प्रतिभू है। E भुगतान देने में त्रुटि करता है, A, B और C में से प्रत्येक 2000 रुपये के भुगतान के लिए उत्तरदायी है।

(B) यदि सह-प्रतिभू भिन्न-भिन्न रकम के लिए बाध्य है तो वे वहाँ तक उनके क्रमानुसार दायित्व की सीमाएँ हैं बराबर भुगतान के लिए उत्तरदायी है।

उदाहरण-

A, B और C, D द्वारा E को ठीक तरह से हिस्सा देने के लिए D के प्रतिभू के रूप में अलग-अलग दण्डों के लिए पृथक् रूप से तीन प्रतिज्ञा पत्र लिखते हैं। A 10,000 रुपये के दण्ड के लिए B 20,000 रुपये दण्ड के लिए और C 40,000 रुपये के दण्ड लिये। D 30,000 रुपये तक की राशि के सम्बन्ध में त्रुटि करता है। B और A, C प्रत्येक 10,000 रुपये भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।

4. सारांश (Summary) :

धारा 124 के अनुसार, "हानिरक्षा या क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध से आशय ऐसे अनुबन्ध से है जिसके द्वारा एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है जो वचनदाता के स्वयं के आचरण से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचे।" जो व्यक्ति हानि से बचाने का वचन देता है उसे हानिरक्षक (Indemnifier) तथा जिसे हानि से बचाने का वचन दिया जाता है उसे हानिरक्षाधारी (Indemnity Holder) कहते हैं। हानिरक्षा का अनुबन्ध के मुख्य लक्षण यह है कि वह अन्य अनुबन्धों की तरह होता है और इसमें भी उन सभी लक्षणों का विद्यमान होना जरूरी है जो कि एक सामान्य अनुबन्ध में होते हैं। क्षतिपूरक अनुबन्ध लिखित, मौखिक या गर्भित किसी भी प्रकार का हो सकता है। क्षतिपूर्ति अनुबन्ध हानिरक्षक का दायित्व तब उत्पन्न होता है जब अनुबन्धों की शर्तों के अनुसार हानि रक्षाधारी को कोई हानि पहुँचती है।

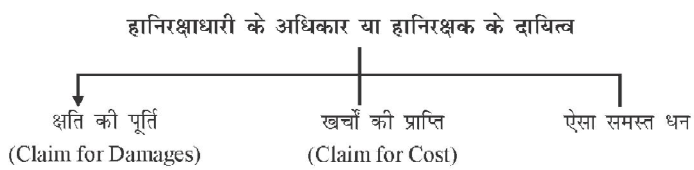

प्रतिभूति अथवा गारण्टी के अनुबन्ध (Contracts of Guarantee)

भारतीय अनुबन्ध की धारा 126 के अनुसार, "प्रतिभूति अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को तीसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा में उसके वचन का निष्पादन करने तथा उसके दायित्वों को पूरा करने का वचन देता है। प्रतिभूति अनुबन्ध में तीन पक्षकार होते हैं - ऋणदाता, प्रतिभू

तथा मूल ऋणी। जो व्यक्ति प्रतिभूति (Guarantee) देता है उसे प्रतिभू कहा जाता है, जिसकी ओर से या जिसकी त्रुटि के लिए प्रतिभूति दी जाती है उसे मूल ऋणी कहा जाता है जिसको प्रतिभूति दी जाती है उसे ऋणदाता कहा जाता है।

प्रतिभूति अनुबन्ध के लक्षण : प्रतिभूति अनुबन्ध के निम्नलिखित लक्षण होते हैं –

(i) तीन पक्षकार
- ऋणदाता
- ऋणी
- प्रतिभू

(ii) तीन अनुबन्ध
- ऋणदाता और ऋणी के बीच
- ऋणदाता और प्रतिभू के बीच
- प्रतिभू और मूल ऋणी के बीच

(iii) प्रतिभू का दायित्व गौण

(iv) वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण

(v) मूल ऋण का अस्तित्व में होना

(vi) मिथ्यावर्णन या छुपाव नहीं

(vii) अनुबन्ध करने की क्षमता

हानिरक्षा और प्रतिभूति अनुबन्ध में अन्तर होता है

हानिरक्षा अनुबन्धों में वचनदाता, वचनग्रहीता को ऐसा सभी हानियों से बचाने का वचन देता है जो वचनग्रहीता को वचनदाता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचे जबकि प्रतिभूति अनुबन्ध में गारण्टी देने वाला केवल तीसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा में उसके दायित्व को पूरा करने के लिए बाध्य होता है।

प्रतिभूति के भेद
- विद्यमान गारण्टी (विद्यमान ऋण के संबंध में)
- भावी गारण्टी (भविष्य के ऋण के संबंध में)

- विशेष प्रतिभूति (विशेष ऋण के सम्बन्ध में)
- चालू प्रतिभूति (विस्तृत भावी ऋणों के सम्बन्ध में)

चालू प्रतिभूति का खण्डन
- सूचना द्वारा
- प्रतिभू की मृत्यु द्वारा

प्रतिभू का अधिकार (Right of Surety)
- प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के साथ सह-विस्तृत होता है
- प्रतिभू प्रतिभूति का अनुबन्ध करते समय अपने दायित्व को सीमित कर सकता है
- जब मूल ऋणी दिवालिया हो जाता है
- संयुक्त रूप से किये गए अनुबन्ध

प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति : प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति निम्नलिखित दशाओं में हो सकती है-

(i) प्रतिभू द्वारा अनुबन्ध का खण्डन करके

(ii) प्रतिभू की मृत्यु होने पर

(iii) नया अनुबन्ध होने की दशा में

(iv) नया अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन करके

(v) मूल ऋणी के मुक्त किये जाने पर

(vi) मूल ऋणी से समझौता करके

(vii) ऋणदाता के किसी कार्य या भूल से

(viii) ऋणदाता की जमानत खो जाने पर

(ix) गारण्टी के अवैध हो जाने पर।

प्रतिभू का अधिकार (Right of Surety)

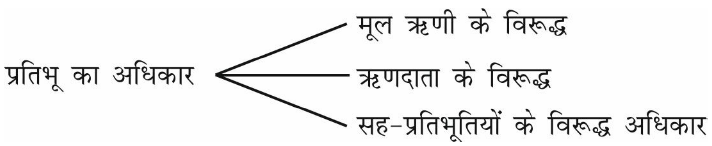

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings) :

1.	Business Regulatory Framework	:	Dr. R.C. Chawla
2.	Business Regulatory Framework	:	Dr. Ashok Sharma
3.	Mercantile Law	:	Dr. N. D. Kapoor
4.	Business Regulatory Framework	:	Dr. K.C. Goyal
5.	Business Laws	:	Tax Mann/Rohini Aggarwal

6. नमूने के लिए प्रश्न (Sample Questions)

1. हानिरक्षा अनुबन्ध तथा प्रतिभूति अनुबन्ध को परिभाषित कीजिए तथा उनमें अन्तर बताइये।
2. प्रतिभूति अनुबन्ध क्या है? किन-किन परिस्थितियों में प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।
3. प्रतिभूति अनुबन्ध क्या है? ऋणदाता, मूल ऋणी और सह-प्रतिभूतों के विरूद्ध एक प्रतिभू के क्या अधिकार हैं?

4. हानिरक्षा अनुबन्ध क्या है? हानिरक्षाधारी के अधिकारों का वर्णन कीजिए।

5. विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का वर्णन कीजिए तथा बताएँ कि एक चालू प्रतिभूति किस प्रकार समाप्त हो जाती है?

6. प्रतिभू की दायित्व की प्रकृति एवं सीमा का वर्णन करें।

7. चालू गारण्टी किसे कहते हैं? यह कब और कैसे खण्डित की जा सकती है?

Paper : BC-201 Business Laws **Revised by : Parveen Khurana**

Lesson No : 6

निक्षेप तथा गिरवी के अनुबन्ध

(Contracts of Ballment and Pledge)

अध्याय की रूपरेखा (Index of the Chapter)

1. प्रस्तावना/परिचय (Introduction)
2. अध्याय का उद्देश्य (Objective)
3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)
   - 3.1 माल की सुपुर्दगी
     - 3.1.1 निक्षेप के आवश्यक तत्व
     - 3.1.2 निक्षेप के रूप
   - 3.2 निक्षेपी के कर्त्तव्य
   - 3.3 निक्षेपी के अधिकार
   - 3.4 निक्षेपग्रहीता के कर्त्तव्य
   - 3.5 निक्षेपग्रहीता के अधिकार
   - 3.6 पूर्वाधिकार
     - 3.6.1 पूर्वाधिकार के लक्षण
     - 3.6.2 पूर्वाधिकार के रूप
     - 3.6.3 विशिष्ट तथा सामान्य पूर्वाधिकार में अन्तर
     - 3.6.4 निक्षेपग्रहीता का सामान्य पूर्वाधिकार
     - 3.6.5 खोई हुई वस्तु को पाने वाला
     - 3.6.6 अधिकार
     - 3.6.7 कर्त्तव्य
   - 3.7 निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति
   - 3.8 निक्षेप गिरवी
     - 3.8.1 गिरवी अनुबन्ध के लक्षण
   - 3.9 गिरवी रख लेने वाले के अधिकार
     - 3.9.1 गिरवी रखने वाले के अधिकार
     - 3.9.2 गिरवी रख लेने वाले के कर्त्तव्य
     - 3.9.3 गिरवी रखने वाले के कर्त्तव्य
     - 3.9.4 माल के स्वामी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा गिरवी
     - 3.9.5 गिरवी तथा निक्षेप में अन्तर
     - 3.9.6 पूर्वाधिकार और गिरवी में अन्तर
     - 3.9.7 गिरवी तथा रहन में अन्तर
4. सारांश
5. प्रस्तावित पुस्तकें
6. नमूने के लिए प्रश्न

1. प्रस्तावना (Introduction)

निक्षेप तथा गिरवी के अनुबन्ध भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के विशेष श्रेणी के अनुबन्ध माने जाते हैं। निक्षेप की स्थिति हमारे दैनिक जीवन में बहुत बार उत्पन्न होती है। हम किसी से कोई सामान थोड़े समय के लिये मांगते हैं तथा उद्देश्य पूरा हो जाने के पश्चात् उसे वापिस कर देते हैं यह निक्षेप का साधारण सा रूप है। इसमें शुल्क का लिया जाना या दिया जाना अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता। इसमें शामिल पक्षकार कानून द्वारा निक्षेप अनुबन्ध की नियमावली को मानने के लिये बाध्य होते हैं। इसी प्रकार गिरवी निक्षेप का ही एक रूप है जिसमें एक व्यक्ति किसी चल सम्पत्ति को जमानत के रूप में रखकर ऋण लेता है तो ऐसी स्थिति में पक्षकारों की वैधानिक स्थिति की जानकारी यहाँ दी जा रही है।

2. अध्याय का उद्देश्य (Objective of the Chapter)

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य पाठकों को निक्षेप तथा गिरवी से जुड़े सभी आवश्यक तथ्यों के बारे में जानकारी प्रदान करना है। इसे अध्ययन के उपरान्त पाठक निक्षेप के अर्थ, लक्षण तथा विभिन्न प्रकारों को जान व समझ पायेंगे। निक्षेप के अनुबन्ध में शामिल दोनों पक्षकार निक्षेपी तथा निक्षेपग्रहीता के कर्त्तव्यों, अधिकारों व दायित्वों को भी पाठकों को समझाने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार एक विशेष शब्दावली पूर्वाधिकारी का अर्थ, लक्षण, प्रकार एवं उनके प्रयोग के लिये अधिकारिक व्यक्तियों की जानकारी भी पाठकों को हो सकेगी। एक विशेष प्रकार के खोई हुई को पाने वाले निक्षेपग्रहीता की अवधारणा भी पाठकों को समझ आयेगी। निक्षेप के एक विशेष प्रकार का गिरवी का अर्थ, लक्षण समझाना भी अध्याय का उद्देश्य है। इसके अन्तर्गत गिरवी रख लेने वाले के अधिकार की पाठकों को समझाने का प्रयास किया गया है।

3. विषय का प्रस्तुतिकरण

निक्षेप तथा गिरवी के अनुबन्ध भी हानिरक्षा तथा प्रतिभूति की ही भांति विशेष व्यापारिक अनुबन्ध है। जिनसे संबंधित व्यवस्थायें अनुबन्ध अधिनियम 1872 के अध्याय 9 (धाराएँ 148-181) में सन्निहित हैं।

निक्षेप का आशय (Meaning of Bailment)

वेलमैंट अंग्रेजी भाषा का शब्द है, जिसकी उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के शब्द Bailler से हुई है। इसका शाब्दिक अर्थ है सुपुर्द करना परन्तु वैधानिक शब्दावली में इसका आशय है "एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक किसी वस्तु का हस्तांतरण करना।"

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 148 के अनुसार – "जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य से इस अनुबन्ध पर माल सुपुर्द करता है कि उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल सुपुर्दगी देने वाले व्यक्ति को वापिस कर दिया जायेगा अथवा उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी तो माल की ऐसे सुपुर्दगी को निक्षेप कहते हैं।"

माल की सुपुर्दगी करने वाले को 'निक्षेपी' (Bailor) एवं जिस व्यक्ति को माल सुपुर्द किया जाता है उसे 'निक्षेपग्रहीता' (Bailee) कहते हैं। उदाहरण के लिये दिनेश अपनी मोटरकार मोहन को चलाने के लिये देता है तो दिनेश को निक्षेपी तथा मोहन को निक्षेपग्रहीता माना जायेगा।

1. "Bailment is the delivery of goods by one person to another for some purpose upon a contract that they shall, when the purpose is accomplished, be returned or otherwise disposed of according to the directions of the person delivering them."

3.1 माल की सुपुर्दगी (Delivery of Goods)

निक्षेप अनुबन्ध के अन्तर्गत माल की सुपुर्दगी विशेष महत्त्व रखती है। धारा 149 के अनुसार "निक्षेपग्रहीता के लिये माल की सुपुर्दगी किसी भी ऐसे कार्यों के करने से हो सकती है जिसका प्रभाव वह हो कि माल निक्षेपग्रहीता अथवा किसी ऐसे व्यक्ति के अधिकार में पहुँच जाए जो कि निक्षेपग्रहीता की ओर से उसे रखने के लिये अधिकृत है।" माल की सुपुर्दगी तीन प्रकार से दी जा सकती है।

(1) **वास्तविक सुपुर्दगी –** जब माल प्रत्यक्ष रूप में निक्षेपग्रहीता को सौंप दिया जाता है तो यह वास्तविकता सुपुर्दगी कहलाती है। जैसे दिनेश द्वारा मोहन को अपनी मोटरकार चलाने के लिये देना।

(2) **रचनात्मक सुपुर्दगी –** यदि निक्षेप की जाने वाली वस्तु पर पहले से ही किसी व्यक्ति का अधिकार हो और वह निक्षेपग्रहीता के रूप में अपने पास रखने को तैयार हो जाये तो उसे रचनात्मक सुपुर्दगी कहेंगे। उदाहरण - राम द्वारा श्याम की दुकान को पंखा खरीदकर इस निर्देश के साथ छोड़ आया कि श्याम वह पंखा उसके घर पहुँचा देगा।

(3) **सांकेतिक सुपुर्दगी –** सांकेतिक सुपुर्दगी कोई भी ऐसा कार्य करके दी जा सकती है जिसके द्वारा वस्तु निक्षेपग्रहीता अथवा उसके प्रतिनिधि के अधिकार में जाये। जैसे दिनेश द्वारा अपने गोदाम की चाबी सुरेश को दिया जाना।

3.1.1 निक्षेप के आवश्यक लक्षण (Requisties of Bailment)

(1) **अनुबन्ध :** निक्षेप के अन्तर्गत अनुबन्ध का होना जरूरी है जिसमें एक विशेष उद्देश्य से एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को माल की सुपुर्दगी दी जाती है एवं उद्देश्य के पूरा होने पर माल वापिस कर दिया जाता है।

(2) **दो पक्षकारों को होना –** निक्षेप अनुबन्ध के अन्तर्गत दो पक्षकार होते हैं, माल का स्थायी अर्थात् माल सुपुर्द करने वाला 'निक्षेपी' व माल को रखने वाला व्यक्ति 'निक्षेपग्रहीता'।

(3) चल सम्पत्ति की सुपुर्दगी – निक्षेप अनुबन्ध के अन्तर्गत केवल चल सम्पत्ति की ही सुपुर्दगी दी जा सकती है। अचल संपत्ति जैसे मकान, जमीन आदि के संबंध में निक्षेप अनुबन्ध नहीं किया जा सकता।

(4) **अस्थाई उद्देश्य –** निक्षेप के अन्तर्गत वस्तुओं का हस्तांतरण अस्थाई रूप से किया जाता है जैसे माल की केवल रखवाली अथवा कुछ समय के प्रयोग के लिये।

(5) **माल की सुपुर्दगी स्वयं को न होना –** निक्षेप के अन्तर्गत माल की सुपुर्दगी एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को होनी चाहिये स्वयं को नहीं। जैसे एक यात्री द्वारा अपने सामान बस की छत पर रखना माल की सुपुर्दगी नहीं कहलायेगी।

(6) **माल के अधिकार का हस्तांतरण –** निक्षेप अनुबन्ध में एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को माल के अधिकार का हस्तांतरण होना अनिवार्य है जो कि वास्तविक, रचनात्मक तथा सांकेतिक किसी भी प्रकार का हो सकता है।

(7) **निर्दिष्ट वस्तु को वापिस करना –** निक्षेप अनुबन्ध में जिस उद्देश्य से माल की सुपुर्दगी दी गई है उस उद्देश्य के पूरा होने के पश्चात् निक्षेपी को या तो माल वापिस कर दिया जाता है या उसके आदेशानुसार माल की व्यवस्था कर दी जाती है।

3.1.2 निक्षेप के रूप (Kinds of Bailment)

(1) **सुरक्षित रखने के निक्षेप –** जब निक्षेपी किसी वस्तु को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से निक्षेपग्रहीता के सुपुर्द करता है तो उसे सुरक्षित रखने को निक्षेप कहते हैं, जैसे बैंक द्वारा सुरक्षा के लिये आभूषण रखना।

(2) **प्रयोग के निक्षेप –** जब निक्षेपी अपनी किसी वस्तु को प्रयोग करने के उद्देश्य से निक्षेपग्रहीता के सुपुर्द करता है तो उसे प्रयोग के निक्षेप कहते हैं।

(3) **गिरवी का निक्षेप –** ऋणदाता द्वारा ऋण देते समय ऋणी से कोई वस्तु जमानत के रूप में रखवा लेना गिरवी द्वारा निक्षेप कहलायेगा।

(4) **मरम्मत के निक्षेप –** बढ़ई की मरम्मत के लिये फर्नीचर देना मरम्मत के लिये निक्षेप कहलायेगा।

(5) **किराये के निक्षेप –** जब निक्षेपी अपनी कोई वस्तु किराये के प्रतिफल में प्रयोग करने के लिये निक्षेपग्रहीता के सुपुर्द करता है तो उसे किराये के लिए निक्षेप कहते हैं।

(6) **परिवहन के निक्षेप –** जब निक्षेपी द्वारा कोई माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने के लिये निक्षेप निक्षेपग्रहीता के सुपुर्द किया जाता है तो वे परिवहन के निक्षेप कहलाते हैं।

3.2 निक्षेप के कर्त्तव्य (Duties of Bailor)

(1) **निक्षेपी भाग के दोष बताना :** यदि निक्षेपित माल के किसी प्रकार का कोई दोष है तो निक्षेपी को उन सब दोषों की जानकारी निक्षेपग्रहीता को दे देनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं करता तो वह निक्षेपग्रहीता को होने वाली प्रत्यक्ष हानि के लिये उत्तरदायी है। जिन दोषों का उसे ज्ञान नहीं है उसके लिये उत्तरदायी नहीं है। परन्तु यदि माल का निक्षेप किराये पर किया गया है तब निक्षेपी ऐसे भी दोषों के लिये उत्तरदायी है जिनका उसे ज्ञान हो अथवा न हो। जैसे अरूण वरूण की गाड़ी किराये पर लेता है। गाड़ी असुरक्षित है। इस विषय में वरूण को जानकारी हो या न हो वह इस असुरक्षा के कारण होने वाली हानि के लिये उत्तरदायी है। (धारा 150)

(2) **आवश्यक व्ययों का भुगतान :** निक्षेपी का कर्त्तव्य है कि यह निक्षेप से संबंधित आवश्यक व्ययों का भुगतान करे। अत: नि:शुल्क निक्षेप की दशा में जबकि निक्षेपग्रहीता को कोई पारिश्रमिक नहीं मिलना है एवं उसे कोई वस्तु सुरक्षित रखनी है या ले जानी है अथवा निक्षेपी के लिये उस पर कोई कार्य करना है, तो निक्षेपी, निक्षेपग्रहीता को ऐसे समस्त आवश्यक व्यय को चुकाने को बाध्य है जो उसके निक्षेप के प्रयोजन के लिये किये हों। जैसे अ, ब के पास अपना घोड़ा छोड़ जाता है, जिसके लिये ब बिना पारिश्रमिक के सहमत हो जाता है। घोड़े को खिलाने, पिलाने व देखभाल आदि करने में जो भी व्यय होगा उसे निक्षेपग्रहीता से प्राप्त कर सकता है। (धारा 158)

(3) **असाधारण व्ययों के भुगतान का दायित्व –** निक्षेप से संबंधित एवं युक्ति संगत व्ययों को चुकाने का दायित्व तो निक्षेपी का है साथ ही निक्षेप के असाधारण व्ययों के भुगतान का दायित्व भी निक्षेपी पर ही होगा। उदाहरण के लिये अ अपना घोड़ा ब को किराये पर देता है। घोड़े की बीमारी पर होने वाला 50 रूपये का असाधारण व्यय अ (निक्षेपी) का ही उत्तरायित्व है। (धारा 158)

(4) **निक्षेपग्रहीता की हानिरक्षा करना –** निक्षेपी के अधिकार की कमी के कारण निक्षेपग्रहीता को यदि कोई क्षति होती है तो निक्षेपी उसकी क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी है। उदाहरण– अ एक

चोरी की गई साईकिल ब के पास निक्षेप कर देता है, साईकिल का असली स्वामी ब पर वैधानिक कार्यवाही करता है तो अ को ब की समस्त हानियों की पूर्ति करनी होगी।

(5) नि:शुल्क उधार दिये गये माल का प्रत्यावर्तन – यदि निक्षेप किसी विशेष उद्देश्य से किया गया है और निशुल्क है, एवं निक्षेपी उस उद्देश्य के पूरा होने से पहले ही निक्षेपग्रहीता से उधार दिया गया माल वापिस लेता है जिससे निक्षेपग्रहीता को हानि उठानी पड़ती है तो ऐसी हानियों के लिये निक्षेपी उत्तरदायी है। (धारा 164)

उदाहरण के लिये राम श्याम को अपनी वस्तु का निशुल्क निक्षेप करता है जिससे श्याम को 200 रूपये का लाभ हो रहा है परन्तु राम नियम अवधि से पूर्व ही श्याम से वह वस्तु वापिस ले लेता है जिससे श्याम को 250 रूपये की हानि होती है। राम श्याम को लाभ हानि का अन्तर यानि 50 रूपये चुकाने को बाध्य है।

(6) निक्षेपित वस्तु की हानियों को वहन करने का दायित्व – यदि निक्षेपग्रहीता द्वारा निक्षेपित माल के प्रति उतनी ही सावधानी/सतर्कता का उपयोग किया गया है जितना कि सामान्यत: एक साधारण व्यक्ति समान परिस्थितियों में अर्थात् उसी आकार मूल्य एवं श्रेणी की वस्तुओं के लिये अपने स्वयं के विषय में करते हैं तो निक्षेपित वस्तु के खो जाने अथवा खराब हो जाने, नष्ट हो जाने आदि हानियों का दायित्व निक्षेपी का ही होगा। (धारा 152)

3.3 निक्षेपी के अधिकार (Rights of Bailor)

(1) क्षतिपूर्ति का अधिकार – किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में यदि निक्षेपग्रहीता ने माल की उचित देखभाल नहीं की है तो इसके परिणामस्वरूप होने वाली हानि क्षतिपूर्ति निक्षेपग्रहीता से प्राप्त करने का अधिकार है।

(2) अनाधिकृत उपयोग पर क्षतिपूर्ति – यदि निक्षेपग्रहीता अनुबन्ध की शर्तों के विरूद्ध निक्षेपित माल का अनाधिकृत उपयोग करता है जिसके परिणामस्वरूप निक्षेप को किसी प्रकार का कोई हानि होती है जो निक्षेपी को यह अधिकार है कि इन सब हानियों की क्षतिपूर्ति से प्राप्त कर सकता है। (धारा 154)

(3) अनुबन्ध समाप्ति का अधिकार – निक्षेपग्रहीता द्वारा निक्षेपित माल के संबंध में निक्षेप अनुबन्ध की शर्तों के विरूद्ध कार्य करने पर निक्षेपी को अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार है। (धारा 153)

(4) निक्षेपित धारा को निक्षेपग्रहीता द्वारा स्वयं के माल में मिलाने पर क्षतिपूर्ति का अधिकार – यदि निक्षेपग्रहीता निक्षेपी की सहमति के बिना निक्षेपित माल को अपने स्वयं के माल में मिला लेता है एवं माल पृथक-पृथक किया जा सकता है तो माल के पृथक करने अथवा बाँटने एवं मिलावट से उत्पन्न हानि की पूर्ति कराने का अधिकार निक्षेपी को होगा। (धारा 155-157)

(5) निक्षेपित वस्तु वापिस लेने का अधिकार : निशुल्क निक्षेप में निक्षेपी को नियम अवधि से पूर्व ही अपनी वस्तु वापिस लेने का अधिकार है। परन्तु साथ ही वह इससे होने वाली हानि की पूर्ति के लिये निक्षेपग्रहीता के प्रति उत्तरदायी है। (धारा 159)

(6) माल को वापिस प्राप्त करने का अधिकार : निक्षेप के उद्देश्य अथवा अवधि के समाप्त होने पर निक्षेपी को निक्षेपित माल बिना मांग किये ही वापिस पाने का अधिकार है। (धारा 160)

(7) माल की वृद्धि या लाभ प्राप्त करने का अधिकार : किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, यदि निक्षेपित माल में कोई वृद्धि होती है अथवा कोई लाभ प्राप्त होता है तो निक्षेपी वह वृद्धि अथवा लाभ प्राप्त करने का अधिकारी है। (धारा 163)

(8) अधिकारों का प्रवर्तन : निक्षेपग्रहीता के कर्त्तव्य ही निक्षेपी के अधिकार होते हैं। अतः इसका प्रवर्तन कराने का अधिकार निक्षेपी का होता है।

3.4 निक्षेपग्रहीता के कर्त्तव्य (Duties of Bailee)

(1) माल की देखभाल : निक्षेपग्रहीता का यह कर्त्तव्य है कि निक्षेपित माल की उतनी सावधानी एवं सर्तकता से देखभाल करे जितनी कि समान परिस्थितियों में एक साधारण बुद्धि-विवेक वाले व्यक्ति से अपेक्षा की जा सकती है। यदि वह इतनी देखभाल नहीं करता है तो इससे होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिये बाध्य है। (B.C.Co.op Bank vs. State of M.P. A.I.R. 1959)

निक्षेपग्रहीता निक्षेपित वस्तु के संबंध में ऐसी हानि के लिये उत्तरदायी नहीं होगा जो कि किसी असाधारण घटना के कारण, जिस पर नियंत्रण रखना उसकी शक्ति से बाहर हो, हुई हो जैसे आँधी, वर्षा, आग, बिजली गिरना, शत्रु द्वारा आक्रमण आदि से हानि। (धारा 151-153)

यदि अनुबन्ध की शर्तों के पालन की प्रगति में अथवा निक्षेपी की आज्ञानुसार कर्त्तव्यपालन में निक्षेपग्रहीता द्वारा निक्षेपित वस्तु की मात्रा, गुण अथवा कीमत में कमी आ जाती है तो वह उत्तरदायी नहीं होगा। (Spurling Ltd. Vs. Brawdshaw 1950 A.I.R.)

(2) नौकर द्वारा किये गये कार्य के लिये उत्तरदायी – यदि निक्षेपित वस्तु को निक्षेपग्रहीता के अधीन काम करते हुए किसी नौकर द्वारा कोई हानि पहुँचाई जाए तो उसके लिये भी निक्षेपग्रहीता उत्तरदायी होगा। परन्तु निक्षेपी के साथ इस संबंध में एक विशेष अनुबन्ध कर वह अपने आप को इस उत्तरदायित्व से मुक्त कर सकता है। उदाहरण के लिये एक कार के स्वामी 'राम' ने अपनी कार को विक्रय हेतु एक दलाल 'श्याम' के पास छोड़ दिया। रसीद में एक वाक्यांश इस प्रकार लिख दिया जाए कि - "ग्राहकों की कारों को हमारे कर्मचारियों द्वारा उन्हीं के जोखिम पर चलाया जायेगा।" तो वह दलाल चालक की असावधानी के कारण हुई हानि के लिये उत्तरदायी नहीं होगा।

(3) निक्षेप की शर्तों के विरूद्ध कार्य न करना – निक्षेपग्रहीता का कर्त्तव्य है कि वह पूर्णतया निक्षेप अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार ही कार्य करे। इसके विरुद्ध कार्य करने पर निक्षेपी अनुबन्ध को समाप्त समझ सकता है एवं निक्षेप की गई वस्तु को वापिस ले सकता है। (धारा 153)

(4) निक्षेपित वस्तु का उचित उपयोग – निक्षेपग्रहीता को निक्षेपित वस्तु का अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार ही प्रयोग करना चाहिये। यदि उसके द्वारा वस्तु का अनुचित प्रयोग करने के कारण वस्तु की कोई क्षति होती है तो उसके लिये निक्षेपग्रहीता उत्तरदायी होगा। (धारा 154)

(5) निक्षेपित माल को अपने माल में न मिलाना – निक्षेपित माल को यदि निक्षेपग्रहीता अपने माल में मिलाना है तो मिलावट व माल को पृथक-पृथक करने का जो भी व्यय होगा उसके लिये निक्षेपग्रहीता उत्तरदायी होगा।

यदि माल निक्षेपी की सहमति से मिलाया गया है तो दोनों पक्ष अपने-अपने हित के अनुसार उत्तरदायी होंगे। (धारा 155)

यदि माल निक्षेपी की सहमति के बिना मिलाया गया है एवं माल का विभाजन किया जा सकता है तो दोनों पक्ष अपने आप माल के अधिकारी होंगे परन्तु माल को छाँटने के व्यय तथा विभाग के कारण होने वाली हानि के लिये निक्षेपग्रहीता उत्तरदायी होगा। (धारा 156)

यदि ऐसे माल को मिलाया जाये जिसे बाद में पृथक-पृथक करना असंभव हो तो निक्षेपग्रहीता निक्षेपी के प्रति पूरे माल के लिये उत्तरदायी होगा। (धारा 157)

(6) **निक्षेपित माल वापिस करना :** निक्षेपग्रहीता का कर्त्तव्य है कि निक्षेप की अवधि की समाप्ति अथवा निर्दिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात् निक्षेपित वस्तु को वापिस कर दे या निक्षेपी के आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दे। (धारा 160-61)

(7) **वृद्धि अथवा लाभ को वापिस करना :** किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में निक्षेपग्रहीता का यह कर्त्तव्य है कि वह निक्षेपित वस्तु में हुई वृद्धि अथवा लाभ को भी निक्षेपी को सौंप दे अथवा उसके आदेशानुसार व्यवस्था कर दे। (धारा 163)

(8) **संयुक्त स्वामियों द्वारा निक्षेप :** किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में यदि माल का निक्षेप संयुक्त स्वामियों द्वारा किया गया है तो निक्षेपग्रहीता उनमें से किसी को भी माल वापिस कर सकता है। उसे सभी संयुक्त स्वामियों की अनुमति लेना आवश्यक नहीं।

3.5 निक्षेपग्रहीता के अधिकार (Right of Bailes)

(1) **आवश्यक व्यय पाने का अधिकार –** निपेक्षग्रहिता को निक्षेपित माल पर किये जाने वाले साधारण अथवा असाधारण व्यय प्राप्त करने का अधिकार है। उदाहरण के लिये 'अ' द्वारा निक्षेप किये गये घोड़े को निक्षेपग्रहीता 'ब' द्वारा खिलाने-पिलाने या बीमारी पर किये जाने वाले व्यय। (धारा 158)

(2) **समय से पूर्व अनुबन्ध खण्डन –** यदि निक्षेपी समय से पूर्व या उद्देश्य की पूर्ति से पहले अपनी वस्तु वापिस लेता है जिससे निक्षेपग्रहीता को लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़े तो निक्षेपग्रहीता इस लाभ-हानि के बीच का अन्तर: यदि कोई है, प्राप्त करने का अधिकारी है। (धारा 159)

(3) **दोष प्रकट न करने पर क्षतिपूर्ति का अधिकार –** यदि निक्षेपी निक्षेपित माल के दोषों को प्रकट नहीं करता है जिसके परिणामस्वरूप निक्षेपग्रहीता को कोई हानि होती है तो निक्षेपग्रहीता उसकी क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है। (धारा 150)

(4) **दूषित स्वत्व की दशा में क्षतिपूर्ति –** यदि निक्षेपित वस्तु पर निक्षेपी का अधिकार नहीं है तो निक्षेपग्रहीता होने वाली सभी हानियों की क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। (धारा 164)

(5) **अन्तर्वाद का अधिकार –** यदि निक्षेपित माल पर निक्षेपी का स्वत्व नहीं है और निक्षेपी के अतिरिक्त कोई और व्यक्ति माल पर स्वामित्व का दावा करता है तो निक्षेपी को माल की सुपुर्दगी रोकने के लिए निक्षेपग्रहीता न्यायालय में प्रार्थना कर सकता है। (धारा 166-167)

(6) **तृतीय पक्ष के विरूद्ध वाद प्रस्तुत करना –** यदि कोई तृतीय पक्षकार निक्षेपग्रहीता को दोषपूर्ण रूप से निक्षेप किये गये माल के उपयोग अथवा अधिकार से वंचित करता है अथवा कोई हानि पहुँचाता है तो निक्षेपग्रहीता उसके विरूद्ध माल के वास्तविक स्वामी की भाँति ही वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है। (धारा 180-181)

(7) **माल पर पूर्वाधिकारी –** किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, यदि निक्षेपग्रहीता ने निक्षेप अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार निक्षेप किये गये माल के संबंध में कोई ऐसा कार्य किया है जिसमें परिश्रम अथवा चतुरता की आवश्यकता हो तो निक्षपेग्रहीता को उस माल को तब तक अपने पास रोके रखने का अधिकार है जब तक उसकी सेवाओं के लिये उचित पारिश्रमिक प्राप्त न हो जाये। (धारा 170)

3.6 पूर्वाधिकार (Lien)

'पूर्वाधिकार' एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति के माल पर जो उसके अधिकार में है उस समय तक रोक रखने का अधिकार है जब तक कि उसकी कुछ मांगों को पूरा न कर दिया जाये। "Lien is a right in one man to retain that which is in his possession belonging to another until certain demands of the person is possession are satisfied."

उदाहरण के लिये मोहन, बिशन नामक दर्जी को एक कपड़ा सूट बनाने के लिये देता है। बिशन एक हफ्ते में सूट बनाने का वचन देता है और एक हफ्ते में सूट तैयार हो जाता है। अत: उसे सूट अपने पास उस समय तक रोक कर रखने का पूर्वाधिकार है जब तक उसे उसका पारिश्रमिक प्राप्त नहीं हो जाता। यदि कोट तैयार करने में एक हफ्ते से ज्यादा समय लगता है तो उसका पूर्वाधिकार समाप्त हो जाता है।

3.6.1 पूर्वाधिकार के लक्षण (Characteristics of Lien)

(1) माल उस व्यक्ति के अधिकार में होना चाहिये जो पूर्वाधिकार का प्रयोग करे।

(2) माल का वास्तविक स्वामी पूर्वाधिकार का प्रयोग करने वाला न होकर कोई अन्य व्यक्ति होना चाहिए।

(3) मांग के पूरा होने तक माल को रोकर रखना।

(4) माल के अधिकार की समाप्ति के साथ ही पूर्वाधिकार भी समाप्त हो जाता है।

(5) पूर्वाधिकार अनुबन्ध से नहीं बल्कि सन्नियम द्वारा प्राप्त होता है।

3.6.2 पूर्वाधिकार के रूप (Kinds of Lien)

(1) विशिष्ट पूर्वाधिकार : विशिष्ट पूर्वाधिकार एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु को, केवल उसी वस्तु विशेष के संबंध में किये गये परिश्रम तथा व्यय के परिशोध के लिये रोक रखने का अधिकार है। विशिष्ट पूर्वाधिकार केवल निम्न व्यक्तियों को ही प्राप्त है।

(a) माल को पाने वाला (Finder of goods) (धारा 168)

(b) निक्षेपग्रहीता (Bailee) (धारा 170)

(c) गिरवी रखने वाला (Pawnee) (धारा 173)

(d) ऐजेन्ट (Agent) (धारा 221)

(e) माल का अदत्त विक्रेता (Unpaid Seller, Sec. 27 of Sale of Goods Act)

(2) साधारण पूर्वाधिकार : साधारण पूर्वाधिकार वह है जिसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के ऐसे माल को जो उसके अधिकार में है, उस समय तक रोक सकता है, जब तक कि उसका पूरा हिसाब चुकता न कर दिया जाये, चाहे हिसाब किताब उसी माल के संबंध में हो या अन्य किसी माल के संबंध में हो।

धारा 171 के अनुसार साधारण पूर्वाधिकार निम्न व्यक्तियों को मिल सकता है -

(a) बैकर्स (b) आढ़तिया (c) घाट पाल (d) हाईकोर्ट के अटार्नी। (e) बीमे के दलाल (f) लिखित अनुबन्ध द्वारा अन्य व्यक्ति

3.6.3 विशिष्ट एवं साधारण पूर्वाधिकार में अन्तर (Difference between General and Particular Lien)

(1) विशिष्ट पूर्वाधिकार केवल उसी वस्तु के प्रयोग में लाया जा सकता है जिस पर निक्षेपग्रहीता ने कोई कार्य किया है जबकि साधारण पूर्वाधिकार निक्षेपित किसी भी माल पर प्रयोग किया जा सकता है।

(2) विशिष्ट पूर्वाधिकार किसी विशेष वस्तु के संबंध में किये गये कार्य के पारिश्रमिक के लिये ही प्रयोग में लाया जा सकता है। जबकि साधारण पूर्वाधिकार लेखे की साधारण बाकी की किसी भी प्राप्य रकम के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।

(3) विशिष्ट पूर्वाधिकार सभी निक्षेपग्रहीता को प्राप्त होता है जबकि साधारण पूर्वाधिकार कुछ निश्चित व्यक्तियों को ही प्राप्त रहता है।

3.6.4 निक्षेपग्रहीता का विशिष्ट अधिकार (Bailee's Particular Lien)

धारा 170 के अनुसार, "यदि निक्षेपग्रहीता ने निक्षेप के उद्देश्य के अनुकूल निक्षेप किये गये माल के संबंध में कोई ऐसी सेवा अथवा कार्य किया है जिसमें परिश्रम अथवा चतुरता आवश्यक है, तो वह उस माल के सेवाओं के लिये उचित पारिश्रमिक मिलने पर विपरीत अनुबन्ध के अभाव में रोक सकता है परन्तु यह अधिकार उसे तब ही प्राप्त होगा जबकि-

(1) निक्षेपग्रहीता ने कोई ऐसी सेवा की है जिसमें विशेष परिश्रम या चतुरता की आवश्यकता पड़ती है।

(2) कार्य निक्षेपी के आदेशानुसार किया गया हो।

(3) कार्य निक्षेपित माल के संबंध में हो।

(4) इसके विपरीत कोई अन्य अनुबन्ध न हो। (धारा 170)

3.6.5 खोई हुई वस्तु को पाने वाला निक्षेपग्रहीता (Finder of Goods as Bailiee)

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 171 के अनुसार खोई हुई वस्तु को पाने वाला निक्षेपग्रहीता के रूप में ही होता है। यदि किसी व्यक्ति को कोई वस्तु पड़ी हुई मिली है और वह उसे अपने अधिकार में ले लेता है तो उसकी स्थिति तुरन्त निक्षेपग्रहीता की हो जाती है और उस वस्तु के संबंध में उसके कुछ अधिकार एवं उत्तरदायित्व उत्पन्न हो जाते हैं।

3.6.6 अधिकार (Rights)

(1) माल पर पूर्वाधिकार : माल को पाने वाला यद्यपि वस्तु के मालिक के विरूद्ध ऐसे कष्ट एवं व्यय की क्षतिपूर्ति के लिये दावा नहीं कर सकता जो उसने वस्तु की सुरक्षा अथवा वास्तविक स्वामी का पता लगाने में स्वेच्छा से किये हैं, परन्तु वह उन सब कष्ट और व्ययों के लिये माल को उस समय तक अपने पास रोककर रख सकता है जब तक कि उसकी क्षतिपूर्ति वास्तविक स्वामी द्वारा न कर दी जाये। (धारा 168)

(2) प्रस्ताविक पुरस्कार के लिये वाद : यदि माल के वास्तविक स्वामी द्वारा खोये हुए माल के संबंध में किसी पुरस्कार की घोषणा की गई है और उसके घोषणा की जानकारी के बाद वस्तु पाई तो वह प्रस्ताविक पुरस्कार की राशि प्राप्त करने के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है यदि उसने माल पुरस्कार

की जानकारी के अभावों में पाया तब उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं होगा। इस संबंध में लालमन शुक्ला बनाम गौरदत्त का मामला उल्लेखनीय है। (धारा 169)

(3) माल को बेचने का अधिकार : यदि माल के वास्तविक स्वामी का पता लगाने में यथोचित परिश्रम के पश्चात् भी वास्तविक स्वामी का पता नहीं लगता अथवा माँग करने पर भी वैध व्ययों को चुकाने से इंकार कर दे तो निम्न दशाओं के अन्तर्गत माल को पाने वाला माल को बेच सकता है –

(a) यदि वस्तु के नष्ट होने अथवा उसके मूल्य का अधिकार भाग कम हो जाने का भय हो। अथवा

(b) वस्तु के संबंध में पाने वाले द्वारा किये गये व्यय वस्तु के मूल्य के 2/3 तक पहुँच गये हैं। (धारा 169)।

3.6.7 कर्त्तव्य (Duties)

(1) माल के वास्तविक स्वामी का पता लगाना।

(2) माल की उचित देखभाल करना।

(3) माल को अपने माल के साथ न मिलाना।

(4) माल को वास्तविक स्वामी को वृद्धि सहित वापिस करना।

(5) माल का अनुचित प्रयोग न करना।

3.7 विशेष अनुबन्ध की समाप्ति (Termination of Bailmeat)

निक्षेप अनुबन्ध निम्न दशाओं में समाप्त हो जाता है –

(1) निक्षेपग्रहीता द्वारा विशेष अनुबन्ध की शर्तों के असंगत कार्य करने पर निक्षेपी को अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार है तथा निक्षेप किया गया माल वापिस लेने का अधिकार है। (धारा 153)

(2) यदि निक्षेप किसी निर्धारित के लिये किया गया है तो निर्धारित अवधि की समाप्ति के बाद निक्षेप अनुबन्ध समाप्त हो जाता है और निक्षेपग्रहीता को बिना माँगे ही निक्षेपी को निक्षेपित वस्तु वापिस कर देनी चाहिए। (धारा 160)

(3) निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात् भी अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। (धारा 160)

(4) निःशुल्क निक्षेप किसी भी समय निक्षेपी द्वारा निर्धारित अवधि उद्देश्य से पूर्व भी समाप्त किये जा सकता है, किन्तु ऐसी स्थिति में निक्षेपी को निक्षेपग्रहीता को होने वाले लाभ-हानि के अन्तर की क्षतिपूर्ति करनी होगी। (धारा 159)

(5) निःशुल्क निक्षेप, निक्षेपी अथवा निक्षेपग्रहीता दोनों में से किसी एक की भी मृत्यु हो जाने पर समाप्त हो जाता है। (धारा 162)

3.8 गिरवी रखने के निक्षेप (Bailment of Pledges)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 172 के अनुसार, "किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन के लिये जमानत के रूप में माल के निक्षेप को गिरवी कहते हैं। (The bailment of goods as security for payment of a debt or performance of promise is called pledge.) जो व्यक्ति वस्तु गिरवी रखता है उसे 'गिरवी रखने वाला' (Pledger or Pawner) एवं जिस व्यक्ति के पास वस्तु गिरवी रखी जाती है उसे 'गिरवी रख लेने वाला' (Pledgee or Pawnee) कहते हैं। गिरवी के अन्तर्गत केवल चल संपत्ति ही गिरवी रखी जा सकती है।

उदाहरण : रमेश अपना स्कूटर सुरेश के पास गिरवी रखकर 2000 रू. प्राप्त करता है। रमेश 'गिरवी रखने वाला' एवं सुरेश 'गिरवी रख लेने वाला' है।

3.8.1 गिरवी अनुबन्ध के लक्षण (Essential of Pledge)

(1) गिरवी केवल चल संपत्ति के संबंध में ही संभव है। किसी प्रकार की संपत्ति जैसे कागजात, दस्तावेज, मूल्यवान वस्तुएँ, अंश, सरकारी प्रतिभूतियाँ विनिमय, साध्य पत्र आदि गिरवी अनुबन्ध के विषय वस्तु हो सकते हैं।

(2) गिरवी रखने वाले का माल पर वैधानिक अधिकार होना चाहिए। एक नौकर जिसके अधिकार में मालिक का सामान है परन्तु वैधानिक अधिकार नहीं है माल की वैध गिरवी नहीं रख सकता।

(3) गिरवी के अन्तर्गत वस्तु का हस्तांतरण 'गिरवी रखने वाला' व्यक्ति से 'गिरवी रख लेने वाला' व्यक्ति को अवश्य हो जाना चाहिए जो कि वस्तु की सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है।

(4) गिरवी रखी जाने वाली वस्तु विक्रय योग्य होनी चाहिए। मुद्रा को गिरवी नहीं रखा जा सकता।

(5) गिरवी के उद्देश्य के पूरा हो जाने अथवा निश्चित समय बाद गिरवी रख लेने वाले द्वारा गिरवी की विषय वस्तु गिरवी रखने वाले को वापिस कर देनी चाहिए।

3.9 गिरवी रख लेने वाले के अधिकार (Rights of Rawnee)

(1) माल को रोकने का अधिकार : गिरवी रख लेने वाला गिरवी रखी वस्तु को तब तक रोककर रख सकता है जब तक कि उसके ऋण, ब्याज अथवा अन्य आवश्यक व्ययों का जिनके संबंध में वस्तु गिरवी रखी गयी थी, पूर्व रूप से भुगतान नहीं हो जाता। (धारा 175)

जब गिरवी की तारीख के बाद रख लेने वाले द्वारा उसी वस्तु के आधार पर कोई अन्य ऋण दिया जाता है तो यह समझा जाता है कि माल को रोककर रखने का अधिकार बाद में दिए गए ऋण पर भी लागू होता है, जब तक कि इस संबंध में कोई विपरीत अनुबन्ध दोनों पक्षकारों के मध्य न हुआ हो। (धारा 174)

(2) असाधारण व्यय पाने का अधिकार : यदि गिरवी रख लेने वाले द्वारा गिरवी रखी वस्तु पर कोई असाधारण व्यय किया जाता है, जैसे गिरवी रखे हुए घोड़े की चिकित्सा पर किया गया व्यय, तो वह इन सब असाधारण व्ययों को गिरवी रखने वाले से प्राप्त करने का अधिकारी है। परन्तु इन व्ययों के लिये उसे गिरवी रखी वस्तु को रोककर रखने का अधिकार नहीं हैं। (धारा 173)

(3) वास्तविक स्वामी के विरूद्ध अधिकार : गिरवी रखने वाले व्यक्ति व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत (कपट, मिथ्यावर्णन, अनुचित प्रभाव एवं उत्पीड़न) व प्राप्त करने की दशा में, यदि माल के वास्तविक स्वामी के द्वारा गिरवी रखने के समय तक अनुबन्ध का खण्डन नहीं किया गया है और गिरवी रख लेने वाले के सद्भाव के प्रतिफल के बदले एवं गिरवी रखने वाले के दूषित स्वामित्व की जानकारी के अभाव में कार्य किया है तो वह वस्तु पर अच्छा स्वामित्व प्राप्त कर लेता है एवं माल का वास्तविक स्वामी उसे माल वापिस करने के लिये बाध्य नहीं कर सकता। (धारा 172a)

(4) गिरवी रखने वाले की त्रुटि की दशा में अधिकार : निश्चित समय पर यदि गिरवी रखने वाले द्वारा अपने वचन का निष्पादन नहीं किया जाता अथवा ऋण का भुगतान नहीं किया जाता तो गिरवी रख लेने को ये अधिकार प्राप्त हैं :

(i) गिरवी रखने के विरूद्ध वचन के निष्पादन अथवा ऋण के भुगतान के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ii) गिरवी रखी वस्तु का 'समपार्श्व जमानत के रूप में रोक सकता है।

(iii) उचित सूचना देकर वस्तु को बेच सकता है। (Sundra Narayana vs. Andhra Bank A.L.R. (1960) Andhra 273)

(iv) विक्रय राशि ऋण भुगतान के लिये प्राप्त होने पर बकाया धन के लिये गिरवी रखने वाले पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

3.9.1 गिरवी रखने वाले के अधिकार

(1) माल वापिस पाने का अधिकार : निश्चित समय पर वचन का पालन करने अथवा ऋण का भुगतान करने पर गिरवी रख लेने वाले से उसे वस्तु वापिस पाने का अधिकार है।

(2) गिरवी रख लेने वाले की त्रुटि की दशा में : यदि गिरवी रख लेने वाला व्यक्ति माल की उचित देखभाल नहीं करता तो गिरवी रखने वाले को क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है।

(3) वृद्धि अथवा लाभ पर अधिकार : यदि गिरवी रखी गई वस्तु में कोई वृद्धि अक्खर लाभ प्राप्त होता है तो गिरवी रखने वाला व्यक्ति उसे प्राप्त करने का अधिकारी है।

(4) बिक्री पर लाभ को प्राप्त करना : यदि गिरवी रखने वाले की त्रुटि में गिरवी रख लेने वाला अथवा वस्तु को बेच देता है और उस पर उसे लाभ प्राप्त होता है अथवा वस्तु का विक्रय मूल्य ऋण के मूल्य अधिक है तो गिरवी रखने वाला व्यक्ति उसे प्राप्त करने का अधिकारी है।

(5) त्रुटि करने के बाद का अधिकार : यदि गिरवी रखने वाला निश्चित समय पर वचन का निष्पादन नहीं करता तो गिरवी रख लेने वाले व्यक्ति द्वारा माल के वास्तविक विक्रय से पहले किसी भी समय गिरवी रखे माल को छुड़ा सकता है, परन्तु ऐसी दशा में उसे मूलधन के अतिरिक्त उन सब व्ययों का भुगतान भी करना पड़ेगा जो उसकी त्रुटि के कारण गिरवी रख लेने वाले को उठाने पड़े हों। (धारा 171) (Jaswant Raj Akhany vs. State of Bombay A.I.R. 1956)

3.9.2 गिरवी रख लेने वाले के कर्त्तव्य (Duties of Pawnee)

(1) **माल की उचित देखभाल :** गिरवी रख लेने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह गिरवी रखे गये माल की उतनी ही देखभाल करें जितनी कि उसके द्वारा स्वयं के माल की देखभाल की जाती है।

(2) **निजी उपयोग में न लाना :** गिरवी रख लेने वाले का यह कर्त्तव्य है कि गिरवी रखी गई वस्तु को अपने निजी प्रयोग में न लाये न किसी अन्य व्यक्ति को प्रयोग हेतु दें।

(3) **वस्तु को न रोकना :** असाधारण व्ययों के भुगतान की प्राप्ति के लिये गिरवी रखी वस्तु को रोककर नहीं रखना चाहिये। केवल ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन के लिये वह ऐसा कर सकता है।

(4) **माल वापिस करना :** जब गिरवी रखने वाले द्वारा ऋण का भुगतान कर दिया जाता है अथवा वचन का निष्पादन कर दिया जाता है तब उसकी वस्तु उसे वापिस कर देनी चाहिए।

(5) **निज के माल में न मिलाना :** गिरवी रख लेने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह गिरवी रखी गई वस्तु को स्वयं की वस्तुओं में न मिलाए।

(6) **अनुबन्ध की शर्तों का पालन करना :** गिरवी रख लेने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह अनुबन्ध की शर्तों के अनुकूल कार्य करें।

(7) **माल को स्वयं न खरीदना :** गिरवी रखने वाले की त्रुटि की दशा में यदि वह माल बेचने के अपने अधिकार का प्रयोग कर रहा है, तो माल के विक्रय की उचित सूचना गिरवी रखने वाले को देना उसका कर्त्तव्य है तथा गिरवी रखी वस्तु को स्वयं नहीं खरीदना चाहिए।

(8) **अतिरिक्त राशि को वापिस करना :** यदि गिरवी रखे माल के विक्रय द्वारा ऋण की राशि से अधिक राशि प्राप्त होती है तो गिरवी रख लेने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह उस आधिक्य को गिरवी रखने वाले को लौटा दे।

3.9.3 गिरवी रखने वाले के कर्त्तव्य (Duties of Pawnor)

(1) **माल के दोषों को प्रकट करना :** गिरवी रखने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वस्तु गिरवी रखते समय उसे उन दोषों के बारे में गिरवी रख लेने वाले को बता दे जिनका कि उसे ज्ञान है।

(2) **आवश्यक व्ययों को भुगतान :** यदि गिरवी रख लेने वाले द्वारा रखी वस्तु की सुरक्षा के लिये उचित व्यय किये गये हैं तो गिरवी रखने वाले का यह कर्त्तव्य है कि ऐसे समस्त साधारण एवं असाधारण व्ययों का भुगतान गिरवी रख लेने वाले को कर दें।

(3) **वचन का निष्पादन :** यदि ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन के लिये कोई अवधि निश्चित की गई है तो गिरवी रखने वाले का यह कर्त्तव्य है कि उस निश्चित अवधि में अपने वचन का निष्पादन करे।

3.9.4 माल के स्वामी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा गिरवी (Plegdes of goods by non-owners):

साधारण माल का स्वामी ही अपने माल का वैध गिरवी रख सकता है परन्तु कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में वे व्यक्ति जो माल के स्वामी नहीं है वे भी अन्य व्यक्तियों के माल की वैध गिरवी रख सकते हैं। निम्न व्यक्तियों द्वारा अन्य व्यक्तियों को माल की वैध गिरवी रखी जा सकती है।

(1) **व्यापारिक ऐजेन्ट द्वारा गिरवी :** एक व्यापारिक ऐजेन्ट की तरह कार्य करते हुए यदि किसी व्यक्ति के अधिकार में कोई माल अथवा माल के अधिकार पत्र है? जो कि स्वामी की सहमति से उसे प्राप्त हुए हैं तो वह स्वामी के माल तथा प्रपत्र गिरवी रख सकता है और यह वैध गिरवी मानी जायेगी। यदि गिरवी रख लेने वाले ने सद्भाव से कार्य किया है और उसे इस बात की जानकारी नहीं है कि गिरवी रखने वाले को माल गिरवी रखने का अधिकार नहीं था जैसे कमीशन ऐजेन्ट तथा दलाल द्वारा गिरवी रखना तो भी वैध गिरवी होगी। (धारा 178)

(2) **व्यर्थनीय अनुबन्ध के अधीन अधिकार प्राप्त व्यक्ति द्वारा गिरवी :** अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 एवं 19A के अधीन उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट एवं मिथ्यावर्णन के अधीन माल पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा अनुबन्ध निरस्त किये जाने से पूर्व भी माल की वैध गिरवी रखी जा सकती है। गिरवी रख लेने वाला माल पर वैध अधिकार प्राप्त कर लेता है। यदि उसने सद्भाव से कार्य किया है एवं उसे गिरवी रख लेने वाले व्यक्ति के स्वत्व संबंधी दोष की जानकारी नहीं है। (धारा 178(A))

(3) **माल में सीमित हित रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी :** किसी माल में सीमित हित रखने वाले व्यक्ति द्वारा भी माल की गिरवी उसकी हित की सीमा तक वैध होगी, यद्यपि वह माल का स्वामी नहीं है। (धारा 179)

(4) सह स्वामी द्वारा गिरवी : एक ही वस्तु के विभिन्न सह स्वामी होने की दशा में यदि वस्तु अन्य सह स्वामियों की सहमति से किसी एक के अधिकार में है तो ऐसा व्यक्ति उस माल की वैध गिरवी रख सकता है। (वस्तु विक्रय अधिनियम धारा 26)

(5) विक्रय के बाद विक्रेता द्वारा गिरवी : ऐसा विक्रेता जिसके पास वस्तु विक्रय हो जाने के पश्चात् भी माल अथवा माल का अधिकार पत्र है, उसके अथवा उसकी ओर कार्य करने वाले व्यापारिक ऐजेन्ट द्वारा उक्त माल की गिरवी वैध होगी। यदि गिरवी रख लेने वाले ने सद्विश्वास से कार्य किया एवं उसे विक्रय व्यवहार का कोई ज्ञान नहीं था। (वस्तु विक्रय अधिनियम धारा 30)

(6) विक्रय से पूर्व विक्रेता बिक्री : यदि वस्तु के विक्रय पूर्व ही विक्रेता की सहमति से क्रेता के माल पर अधिकार कर लिया है तो उसके द्वारा माल की वैध गिरवी रखी जा सकती है। यदि गिरवी रख लेने वाले के सद्विश्वास से कार्य किया है और उसे पिछले व्यवहार की जानकारी नहीं है। (धारा विक्रय अधिनियम धारा 30)

3.9.5 गिरवी तथा निक्षेप में अन्तर (Difference between Pledge and Bailment) :

(1) गिरवी के अनुबन्ध 172 में परिभाषित है जबकि निक्षेप के अनुबन्ध धारा 148 में परिभाषित है।

(2) गिरवी के अन्तर्गत वस्तुओं की सुपुर्दगी किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन की प्रतिभूति के रूप में दी जा सकती है जबकि निक्षेप से वस्तु की सुपुर्दगी किसी विशिष्ट उद्देश्य हेतु दी जाती है।

(3) गिरवी रखी वस्तु को प्रयोग करने का अधिकार नहीं होता निक्षेपित वस्तु प्रयोग की जा सकती है।

(4) गिरवी रख लेने को विशेषाधिकार के अतिरिक्त कुछ दशाओं में माल के विक्रय का अधिकार है परन्तु निक्षेपग्रहीता को माल पर केवल विशेषाधिकार है। बेचने का अधिकार नहीं है।

(5) गिरवी में निक्षेप सम्मिलित है। निक्षेप में गिरवी सम्मिलित नहीं है।

(6) गिरवी में प्रतिफल का होना आवश्यक है जबकि निक्षेप में प्रतिफल हो भी सकता है और नहीं भी जैसे नि:शुल्क निक्षेप में प्रतिफल आवश्यक नहीं है।

3.9.6 पूर्वाधिकार और गिरवी में अन्तर (Difference between Lien and Pledge)

(1) पूर्वाधिकार सन्नियम द्वारा उत्पन्न होता है। गिरवी की उत्पत्ति पक्षकारों के बीच अनुबन्ध द्वारा होती है।

(2) पूर्वाधिकार किसी यज्ञ को पूरा करने के समय तक माल को अपने पास रखने का अधिकार है। गिरवी किसी ऋण अथवा वचन के निष्पादन के लिये जमानत के रूप में माल का निक्षेप है।

(3) पूर्वाधिकार में माल के विक्रय का अधिकार नहीं होता। गिरवी के अन्तर्गत किसी त्रुटि की दशा में माल बेचा जा सकता है।

(4) पूर्वाधिकार में स्वामी के पास माल चला जाने पर वह अधिकार भी समाप्त हो जाता है। गिरवी के अन्तर्गत यह आवश्यक नहीं है कि गिरवी स्वामी को माल वापिस देने पर हर हालत में समाप्त हो ही जाए।

(5) पूर्वाधिकार रखने वाले व्यक्ति अपने दावे को न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं करवा सकता, वह पूर्णत: एक निष्क्रिय अधिकार है। गिरवी के पूर्वाधिकार के अतिरिक्त वाद को न्यायालय में प्रस्तुत करने का भी अधिकार प्राप्त है।

3.9.7 गिरवी और रहन में अन्तर (Difference between Pledge and Mortgage)

(1) गिरवी सदैव चल संपत्ति की होती है। रहन सदैव अचल सम्पत्ति का होता है।

(2) गिरवी में माल के अधिकार का हस्तांतरण होता है जबकि रहन में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

(3) गिरवी में गिरवी रखे हुए माल का प्रवेश निषेध है जबकि रहन में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

(4) गिरवी का लिखित होना आवश्यक नहीं है। रहन 100 रूपये से अधिक होने पर लिखित रजिस्टर्ड तथा दो साक्षियों द्वरा प्रमाणित होना आवश्यक है।

(5) गिरवी रखने वाला गिरवी रखी वस्तु पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। रहन में रहनदार कुछ परिस्थितियों में संपत्ति पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।

(6) गिरवी रखी वस्तु की जमानत पर एक समय में केवल एक ही ऋण लिया जा सकता है। रहन के अन्तर्गत एक ही सम्पत्ति की जमानत पर उसके वास्तविक मूल्य तक अनेक ऋण अनेक रहनदारों से प्राप्त किये जा सकते हैं।

(7) गिरवी में माल की सपुर्दगी गिरवी रखने वाले को दी जाती है। रहन में सुपुर्दगी रहनदार को देना आवश्यक नहीं है।

(8) गिरवी रखने की त्रुटि की दशा में केवल जमानत में दी गई वस्तु को बेचने का अधिकार नहीं है। रहने में उस रहन दार को जिसने पहले ऋण दिया है दूसरे रहनदारों से पहले ऋण की रकम पाने का अधिकार होता है।

(9) गिरवी रख लेने वाला गिरवी से प्राप्त वस्तु को दूसरे को गिरवी रखकर ऋण नहीं ले सकता। रहन में, रहन में दी गई रकम दूसरे व्यक्ति से रहन की जमानत की संपत्ति का पुनः रहन कर सकता है।

4. सारांश (Summary)

निक्षेप तथा गिरवी विशेष प्रकार के व्यापारिक अनुबन्ध है। जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य से इस अनुबन्ध पर माल सुपुर्द करता है कि उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल सुपुर्दगी देने वाले व्यक्ति को वापिस कर दिया जाएगा तो अथवा उसके आदेशानुसार इसकी व्यवस्था कर दी जाएगी तो माल की ऐसी सुपुर्दगी को निक्षेप कहा जाता है। माल की सुपुर्दगी करने वाले को निक्षेपी तथा जिसे माल सुपुर्द किया जाता है उसे निक्षेपग्रहीता कहा जाता है। वस्तु की सुपुर्दगी वास्तविक, सांकेतिक या रचनात्मक किसी भी विधि से संभव होती है। निक्षेप का उद्देश्य वस्तु की सुरक्षा प्रयोग, परिवर्तन, मरम्मत आदि में से कोई भी हो सकता है। निक्षेपी के कर्त्तव्यों में उसके कर्त्तव्य निक्षेपग्रहीता को माल के दोषों को प्रकट करना, उसके आवश्यक खर्चों का भुगतान करना तथा असाधारण व्ययों का भुगतान करना आदि होते हैं। निक्षेपी के अधिकारों में मुख्य अधिकार क्षतिपूर्ति का अधिकार, वस्तुओं का अनाधिकृत व असंगत प्रयोग न करना, माल वापिस करना आदि होते हैं। इसके विपरीत निक्षेपग्रहीता के कर्तव्य तथा अधिकार निक्षेपी के अधिकार तथा कर्तव्यों के विपरीत होते हैं। पूर्वाधिकार (Lien) एक व्यक्ति द्वारा किसी इसके व्यक्ति के माल पर जोकि उसके अधिकार में है उस समय तक रोक रखने का अधिकार है जब कि उसको माँगों को पूरा न कर दिया जाये। पूर्वाधिकार विशिष्ट अथवा साधारण हो सकता है। ये पूर्वाधिकार अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग व्यक्तियों में प्रयोग किया जा सकता है।

'गिरवी' किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन के लिये जमानत के रूप में माल के निक्षेप को 'गिरवी' कहते हैं। जो व्यक्ति गिरवी रखता है उसे 'गिरवी रखने वाला' एवं जिस व्यक्ति के पास वस्तु गिरवी रखी जाती है उसे 'गिरवी रख लेने वाला' कहा जाता है। दोनों ही पक्षकार के एक-दूसरे के विरूद्ध विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं जिनका प्रयोग वे आवश्यकतानुसार तथा परिस्थितियों के अनुसार कर सकते हैं। इसी प्रकार उनके कर्त्तव्य भी उत्पन्न होते हैं जिनका पालन उन्हें करना होता है। सामान्यतया गिरवी वस्तु के स्वामी के द्वारा किया जा सकता है परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में गिरवी वस्तु के स्वामी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जा सकती है तथा वह वैध होती है। गिरवी तथा निक्षेप दोनों एक-दूसरे से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है परन्तु फिर भी उनमें कुछ आधारों पर अन्तर किया जा सकता है। इसी प्रकार रहन भी गिरवी से संबंधित है परन्तु रहनका मुख्य संबंध स्थायी संपत्तियों को जमानत के रूप में रखकर ऋण प्राप्त करने से होता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य आधारों पर भी उनमें अन्तर किया जा सकता है।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यावसायिक नियमन रूपरेखा - Dr. R. C. Chawla
2. व्यावसायिक नियमन रूपरेखा - Dr. Ashok Sharma
3. व्यावसायिक नियमन रूपरेखा - Dr. S.C. Aggarwal
4. व्यावसायिक नियमन रूपरेखा - Dr. S.M. Sukhal
5. Merecantile Law - Dr. N.D. Kapoor
6. Business Law - Rohini Aggawal
7. Business Regulatory Framework - Dr. B.K. Goyal
8. व्यावसायिक नियमन रूपरेखा - नौलखा

6. नमूने के लिये प्रश्न

1. निक्षेप की परिभाषा और निक्षेप (Bailor) तथा निक्षेपकर्त्ता (Bailee) के उत्तदायित्व तथा कर्त्तव्य बताईये ।
2. माल पाने वाले के अधिकार एवं दायित्व क्या होते हैं? माल पाने वाले का पूर्वाधिकार किस प्रकार का होता है ?
3. गिरवी से आप क्या समझते हैं? गिरवी तथा निक्षेप में अन्तर बताइये। गिरवी रखने वाले तथा गिरवी रख लेने वाले के अधिकार एवं कर्त्तव्य बताईये।
4. वस्तु के मालिक के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना किन दशाओं में वैध है?
5. नि:शुल्क निक्षेप से क्या आशय है? ऐसे निक्षेप से संबंधित नियम क्या है?

Paper : BC-201 Business Laws **Revised by : Parveen Khurana**

Lesson No : 7

एजेन्सी के अनुबन्ध

(Contracts of Agency)

अध्याय की विषय सूची (Contents of the Chapter)

1. परिचय (Introduction)
2. अध्याय का उद्देश्य (Objective of Chapter)
3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)
   3.1 परिभाषा
      3.1.1 एजेन्सी के नियम
      3.1.2 एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है ?
      3.1.3 एजेन्ट कौन नियुक्त किया जा सकता है ?
      3.1.4 एजेन्सी के लिए प्रतिफल
   3.2 एजेन्सी की स्थापना की विधियाँ
      3.2.1 पुष्टिकरण के प्रभाव
      3.2.2 पुष्टिकरण से सम्बन्धित निगम
   3.3 एजेन्ट के अधिकार
      3.3.1 एजेन्ट के अधिकार का हस्तांतरण
      3.3.2 नियोक्ता, एजेन्ट एवं उपएजेन्ट के मध्य वैधानिक स्थिति
      3.3.3 स्थानापन्न एजेन्ट
      3.3.4 उपएजेन्ट तथा स्थापन्न एजेन्ट में अन्तर
   3.4 अन्य व्यक्ति के साथ किये अनुबन्धों पर एजेन्सी का प्रभाव
      3.4.1 तृतीय पक्षकार के प्रति नियोक्ता का दायित्व
      3.4.2 बनावटी एजेन्ट का दायित्व
      3.4.3 एजेन्ट का व्यक्तिगत दायित्व
   3.5 एजेन्सी की समाप्ति
   3.6 नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के कर्त्तव्य
   3.7 एजेन्ट के अधिकार
   3.8 एजेन्टों का वर्गीकरण
4. सारांश
5. प्रस्तावित पुस्तकें
6. नमूने के लिए प्रश्न

1. परिचय (Introduction)

आधुनिक जगत् में व्यापार व वाणिज्य के क्षेत्र का असीमित विकास हुआ है तथा व्यापार पर नियन्त्रण करना तथा उसका संचालन करना अब केवल एक अकेले व्यक्ति का काम नहीं रह गया। अत: विकास के लिये वह किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करता है जो उसका प्रतिनिधित्व कर सके तथा व्यवसाय के विकास में उसकी सहायता कर सके। व्यवसाय में ऐसा व्यक्ति एजेन्ट कहलाता है तथा उसके साथ किया गया अनुबन्ध एजेंसी का अनुबन्ध कहलाता है। एजेंसी के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न प्रावधानों को जानना व समझना प्रत्येक व्यवसायी व वाणिज्य के छात्र के लिये आवश्यक है।

2. अध्याय का उद्देश्य (Objectives of the Chapter)

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य पाठकों को एजेन्सी की अवधारणा से परिचित करवाना है। इसके अन्तर्गत एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है तथा कौन नियुक्त किया जा सकता है यह भी उन्हें समझाया गया है। एजेन्सी की स्थापना की विधियाँ, एजेन्ट के अधिकार, उसकी वैधानिक स्थिति आदि से भी पाठकों को परिचित करवाया गया है। इसी अध्याय के अध्ययन के उपरान्त एक एजेन्ट के उत्तरदायित्वों की जानकारी भी पाठकों को हो पाएगी। इसके विपरीत नियोक्ता के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों से भी पाठकों को परिचित करवाया गया है। एजेन्सी के अनुबन्ध की समाप्ति की परिस्थितियों को भी पाठक समझ पाने में सफल होंगे। अत: अध्याय के अन्त में पाठक एजेन्सी के अनुबन्धों से जुड़ी सभी धारणाओं को समझ पाने में सफल होंगे।

3. विषय का प्रस्तुतीकरण

आधुनिक समय में व्यापार व वाणिज्य के क्षेत्र इतने अधिक विस्तृत हो गए हैं कि एक अकेले व्यक्ति के लिये उसे संभालने एवं संचालन करना संभव नहीं है। इसलिए एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति करना आवश्यक है जो व्यापार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर सके। कानून भी ऐसे व्यक्तियों द्वारा कार्य करने की आज्ञा देता है एवं ऐसे प्रतिनिधि द्वारा किये गये कार्यो को वही प्रभाव प्रदान करता है। जैसा कि स्वयं मालिक द्वारा किये जाने पर होता है। इन व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों का संचालन करने हेतु राजनियम द्वारा कुछ नियम बना दिये गये हैं जो कि भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 182 से 238 में सन्निहित हैं।

3.1 परिभाषा (Definition)

'वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति की ओर से किसी कार्य को करने के लिये नियुक्त किया जाए एजेन्ट कहलाता है।"

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 182 के अनुसार 'वह व्यक्ति जो किसी दूसरे व्यक्ति की ओर से कोई कार्य करने के लिये अपना तृतीय पक्षों के साथ व्यवहारों में किसी दूसरे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने के लिये नियुक्त किया जाता है एक एजेन्ट अथवा अभिकर्ता कहा जाता है।

वह व्यक्ति जिसकी ओर से कोई कार्य करता है अथवा जिसकी ओर से इस प्रकार का प्रतिनिधित्व किया जाता है 'नियोक्ता' (Principal) कहलाता है एवं प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति एजेन्ट अथवा अभिकर्ता कहलाता है। नियोक्ता द्वारा अपना एजेन्ट नियुक्त करने पर उनमें परस्पर एक वैधानिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जिसे एजेन्सी कहते हैं।

1. Companies Digest

2. "An agent is a person employed to do any act for another or represent another in dealing with third person" 182

अंग्रेजी राजनियम के अनुसार 'एजेन्सी का अनुबन्ध एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के द्वारा, तृतीय पक्ष के साथ वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये नियुक्ति है।' यह परिभाषा एजेन्ट के सारतत्व को स्पष्ट करती है। इससे स्पष्ट है कि एजेन्ट ऐसा व्यक्ति है जो नियोजक एवं तृतीय पक्ष को अनुबन्ध सम्बन्धी सम्बन्ध में बांधता है।

3.1.1 एजेन्ट के नियम (Rules of Agency)

(1) कोई भी व्यक्ति जो दूसरे के माध्यम से कार्य करता है स्वयं उसका कर्त्ता माना जाता है। इस आधार पर भी कुछ कार्यों को छोड़कर एजेन्ट द्वारा किये गये नियोक्ता द्वारा ही किए माने जाते हैं।

(2) अनुबन्ध करने में समर्थ व्यक्ति जो कुछ स्वयं करता है ठीक वही वह एजेन्ट से भी करा सकता है, केवल व्यक्तिगत प्रकृति कार्यों सम्बन्धी को छोड़कर जैसे विवाह, चित्रकला आदि।

3.1.2 एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है? (Who may Employ an Agent)

केवल वही व्यक्ति जो प्रचलित राजनियम के अनुसार व्यस्क हों एवं स्वस्थ मस्तिष्क का हो अर्थात् अनुबन्ध करने की क्षमता रखता हो एजेन्ट नियुक्त कर सकता है। ऐसा व्यक्ति जिसमें अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं है। ऐसे व्यक्ति के लिये राजनियम में कोई उत्तरदायित्व निर्धारित नहीं किए गए हैं। उसके द्वारा किए गए अनुबन्ध व्यर्थ होने के कारण राजनियम द्वारा प्रवर्तित नहीं कराये जा सकते। अत: जब उसमें स्वयं अनुबन्ध द्वारा बाध्य होने की योग्यता नहीं है तो वह अपने एजेन्ट की प्रगति के सम्बन्ध में किए गए कार्यों के लिये भी उत्तरदायी नहीं होता। उसके अतिरिक्त एक एजेन्ट द्वारा किया गया कार्य, उसके नियोक्ता द्वारा किया गया कार्य माना जाता है और एजेन्ट का ऐसे कार्यों के लिये कोई उत्तरदायित्व नहीं होता, यदि वे कार्य उसने अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत किए हों। अत: नियोक्ता के लिये अनुबन्ध करने की क्षमता रखना परम आवश्यक है, एक अव्यस्क व्यक्ति एवं अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति नियोक्ता नहीं हो सकता। (धारा 183)

3.1.3 एजेन्ट कौन नियुक्त किया जा सकता है। (Who may be an Agent)

कोई भी व्यक्ति एजेन्ट नियुक्त किया जा सकता है। एजेन्ट के लिये अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक नहीं है। अनुबन्ध करने में असमर्थ व्यक्ति नियोक्ता के प्रति अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। जहाँ एक तृतीय पक्ष का सम्बन्ध है। एजेन्ट में अनुबन्ध करने की क्षमता महत्त्व नहीं रखती। इससे स्पष्ट होता है कि एक पागल व्यक्ति अथवा अव्यस्क व्यक्ति भी एजेन्ट नियुक्त किया जा सकता है क्योंकि उसको कोई व्यक्तिगत उत्तरदायित्व तृतीय पक्ष के लिये नहीं होता। यदि एजेन्सी के दौरान एजेन्ट ने कुछ दुराचरण किया है और उससे नियोजन की सम्पत्ति को कोई हानि पहुँचती है तो ऐसी हानि स्वयं नियोक्ता को ही वहन करनी होगी। अत: नियोक्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसे ही व्यक्ति को ऐजेन्ट नियुक्त करे जो वैधानिक रूप से अनुबन्ध करने योग्य है जिससे दुराचरण की दशा में उसको दोषी ठहराया जा सके। अत: स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति एजेन्ट नियुक्त किया जा सकता है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति एजेन्ट नियुक्त नहीं कर सकता। (धारा 184)

3.1.4 एजेन्सी के लिए प्रतिफल (Consideration for Agency)

नियोक्ता का एजेन्ट द्वारा अपना प्रतिनिधित्व कराने के लिये सहमत हो जाना ही एजेन्सी अनुबन्ध के लिये पर्याप्त प्रतिफल माना जाता है। यह आवश्यक नहीं कि एजेन्ट के रूप में कार्य करने की सहमत होने वाले व्यक्ति को उसकी सेवाओं के लिए कोई पारिश्रमिक ही मिले। वह बिना पारिश्रमिक के भी कार्य कर सकता है। पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले एजेन्ट को 'पारिश्रमिक सहित एजेन्ट (Gratuitous Agent) तथा पारिश्रमिक प्राप्त न करने वाले एजेन्ट को 'पारिश्रमिक रहित एजेन्ट' (Non-Gratuitous Agent) कहते हैं। 'पारिश्रमिक रहित एजेन्ट' अपने नियोक्ता द्वारा सौंपे गए कार्य को आरम्भ करने के लिए बाध्य नहीं है जबकि पारिश्रमिक सहित एजेन्ट नियोक्ता द्वारा सौंपे गये कार्य को आरम्भ करने के लिए बाध्य है। पारिश्रमिक रहित एजेन्ट नियोक्ता द्वारा सौंपे गये कार्य को आरम्भ करने से मना भी कर सकता है। परन्तु एक बार कार्य आरम्भ करने के बाद उसका दायित्व पारिश्रमिक पाने वाले एजेन्ट के समान हो जाता है। (धारा 185)

3.2 एजेन्सी की स्थापना की विधियाँ (Methods of Creating an Agency)

(1) **स्पष्ट ठहराव द्वारा** - जब लिखित अथवा मौखिक आदेश द्वारा किसी व्यक्ति को एजेन्ट नियुक्त किया जाता है, तब एजेन्ट सम्बन्धों की स्थापना स्पष्ट अनुबन्ध द्वारा मानी जाती है। ऐसी स्थिति में एजेन्ट के अधिकार स्पष्ट कर दिये जाते हैं जिससे कि वह अपने अधिकारों की सीमा के भीतर कार्य करके नियोक्ता को बाध्य बना सके। (धारा 187)

(2) **गर्भित अधिकार द्वारा –** जब पक्षकारों के आचरण अथवा प्रकरण की परिस्थितियों के कारण एजेन्सी सम्बन्धों की स्थापना होती है तब उसे गर्भित एजेन्सी की संज्ञा दी जाती है। मालिक तथा कर्मचारी, पति एवं पत्नी सांझेदारी में प्रत्येक सांझेदार के बीच ऐसी एजेन्सी की स्थापना मानी जाती है। (धारा 187)

उदाहरण – बम्बई निवासी राज की दिल्ली में एक आभूषणों की दुकान है जिसकी देखभाल आदि सभी कार्य महेन्द्र द्वारा किये जाते हैं। महेन्द्र अन्य व्यक्तियों से दुकान के लिये राज के नाम से माल खरीदता है एवं राज की जानकारी में तथा उसी के धन में से वह उनका भुगतान करता रहा है। महेन्द्र, राज के आचरण के कारण राज का एजेन्ट समझा जाएगा।

पत्नी का पति के लिए गर्भित एजेन्ट होना – यदि पति द्वारा पत्नी के भरण-पोषण की व्यवस्था नहीं की जाती तो पत्नी पति के साख पर आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कर सकती है।

जब पति पत्नी साथ रहते हों - इस सम्बन्ध में गिरधारी लाल बनाम क्रोफोर्ड का किस्सा उल्लेखनीय है। इस मामले में हाईकोर्ट के निर्णय के अनुसार, "पत्नी के ऋणों के लिये पति का दायित्व एजेन्सी के सिद्धान्त पर आधारित है पति को तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। जब यह स्पष्ट हो सके कि पति ने स्पष्ट या गर्भित रूप से पत्नी को सम्बन्धित कार्य के सम्बन्ध में अपनी सहमति अथवा आज्ञा दे दी थी।"

पति अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है यदि वह निम्न में से कोई एक कारण प्रमाणित कर दे-

(i) पत्नी को उसने स्पष्ट रूप से धन उधार लेने से मना कर दिया था।'

(ii) पत्नी द्वारा क्रय की गई वस्तुएँ "आवश्यकता की वस्तुएँ" नहीं है।

(iii) विक्रेता इस बात से परिचित है कि पत्नी की आवश्यकताओं की वस्तुएँ क्रय करने हेतु यथेष्ठ धन दिया गया है।

(iv) पति द्वारा ऋणदाता अथवा विक्रेता को स्पष्ट रूप से पत्नी को उधार माल देने से मना कर दिया था जब पत्नी अपने पति से अलग रहती हो।

(v) यदि पति पत्नी को बिना किसी दोष के त्याग दे और पत्नी अपने किसी दोष के बिना ही अलग रह रही है एवं पति द्वारा उसके भरण–पोषण की कोई व्यवस्था नहीं की गई है तो पत्नी अपनी आवश्यकताओं के लिए पति को गर्भित अधिकार द्वारा बाध्य कर सकती है यदि पति द्वारा पत्नी के भरण–पोषण की व्यवस्था कर दी जाती है तो पत्नी को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

(vi) जब पत्नी स्वेच्छापूर्वक बिना किसी कारण के अथवा स्वयं के दोष के कारण पति से अलग रह रही है तो वह पति की गर्भित एजेन्ट नहीं मानी जाती। अतः वह पति को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिये बाध्य नहीं कर सकती क्योंकि ऐसी दशा में पति पर उसके भरण–पोषण का कोई दायित्व नहीं होता।

(i) Debeman Vs. Mellon.

(ii) Etheringlon Vs. parrot

(Hindustan Insurance Co. Vs. Jayalakshmimms 1959 A.P.)

(3) आवश्यकता द्वारा – किन्हीं विशेष परिस्थितियों में राजनियम एक व्यक्ति को दूसरे का एजेन्ट बनने का अधिकार प्रदान कर देता है। ऐसी एजेन्सी को 'आवश्यकता द्वारा एजेन्सी' कहते हैं। कभी–कभी परिस्थितियाँ एक व्यक्ति को विवश कर देती है कि वह दूसरे व्यक्ति की ओर से बिना उसके स्पष्ट अधिकार ही कार्य करे। इस स्थिति में नियोक्ता एवं एजेन्ट के सम्बन्धों की स्थापना के लिए राजनियम द्वारा नियोक्ता की सहमति मान ली जाती है। किसी आकस्मिक घटना अथवा आवश्यकता के समय माल के स्वामी की ओर से माल की देखभाल के लिये व्यक्ति आवश्यकता द्वारा एजेन्ट हो सकता है और उसके द्वारा किए गए कार्यो के लिए माल का स्वामी दायी होगा।' आवश्यकता का सिद्धान्त उन मामलों में भी लागू होता है जब संकटकाल में एजेन्ट द्वारा अपने अधिकारों की सीमा के बाहर कार्य किया गया हो परन्तु उसके लिए आवश्यक है कि –

(i) एजेन्ट नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित करने की स्थिति में नहीं था।

(ii) नियोक्ता की रक्षा हेतु उसने सभी आवश्यक एवं उचित कदम उठाये हों।

(iii) उसने सद्‌भाव से कार्य किया था।

(iv) आवश्यकता वास्तविक एवं निश्चित थी धारा (189)।

(4) गत्याबोध अथवा प्रदर्शन द्वारा – गत्याबोध का सिद्धान्त मूल रूप से भारतीय साक्षी अधिनियम की धारा 115 में दिया गया है। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपने शब्दों अथवा आचरण द्वारा यह विश्वास कर लेने देता है कि एक विशेष व्यक्ति उसका एजेन्ट है जबकि व्यक्ति

वास्तव में उसका एजेन्ट नहीं है तो इस प्रकार प्रदर्शन करने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा उस व्यक्ति विशेष के किये गए व्यवहारों के लिये अपने दायित्व को अस्वीकार करने से रोक दिया जाता है अर्थात् उसके इस प्रदर्शन से प्रेरित होकर तृतीय पक्ष ने उस विशेष व्यक्ति से यह मानकर कि वह प्रदर्शनकर्त्ता का एजेन्ट कुछ व्यवहार के लिए है तो प्रदर्शनकर्त्ता नियोक्ता की ही भान्ति उत्तरदायी होगी। (धारा 237)

गत्याबोध अथवा प्रदर्शन के तीन रूप हैं -

(i) एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपना एजेन्ट मान सकता है यद्यपि वह दूसरा व्यक्ति उसका एजेन्ट नहीं है और न कभी रहा है।

(ii) जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को यह विश्वास कर लेने देता है कि उसके एजेन्ट के अधिकार इससे कहीं अधिक है जितने उसे नियोक्ता द्वारा प्रदान किए गए हैं।'

(iii) एक व्यक्ति जब किसी ऐसे व्यक्ति को एजेन्ट मान लेता है जोकि पहले उसका एजेन्ट था, यद्यपि अब नहीं है।

(5) पुष्टिकरण द्वारा - जब एक व्यक्ति बिना नियोजन की जानकारी और अधिकार के उसके लिये कोई कार्य करता है और बाद में नियोक्ता उस कार्य की पुष्टि करता है तो पक्षकारों के बीच 'पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी स्थापित' होना माना जाता है।

एजेन्ट को नियोक्ता की ओर से कार्य करने के लिये अधिकार होना चाहिए जोकि स्पष्ट हो सकता है अथवा पक्षकारों के आचरण में गर्भित हो सकता है।' अन्यथा नियोक्ता बिना अधिकार प्राप्त किए गए कार्यों के लिये उत्तरदायी नहीं होगा। अतः यदि नियोक्ता की जानकारी के बिना किसी व्यक्ति ने कोई कार्य किया है, तो वह उसे अस्वीकार कर सकता है अथवा उसकी पुष्टि भी कर सकता है।

1. Wacttev Vs. Fenwick.
2. Fruman Vs. Loder.
3. Laxmi Ratan Cotton Mills Co. Ltd. Kanpur Vs. Jute Mills Co. Ltd. Kanpur A.I.R.(1957)
4. Govt. of India Vs. Jamunahar, 1960.

उस कार्य का वही वैधानिक प्रभाव होगा जैसे कि वह कार्य उसी के अधिकार से किया गया था। (धारा 196)

कार्य का पुष्टिकरण स्पष्ट हो सकता है अथवा उस व्यक्ति के जिसकी ओर से कार्य किया गया है के आचरण में गर्भित हो सकता है।

उदाहरण - अ, ब के अधिकार बिना उसका रूपया स को उधार दे देता है। बाद में ब उक्त धन पर से ब्याज को स्वीकार कर लेता है। ब के आचरण में ऋण की पुष्टिकरण गर्भित है।

3.2.1 पुष्टिकरण के प्रभाव

1. पुष्टिकरण द्वारा पक्षकारों के बीच वास्तविक एजेन्सी सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं एवं दोनों को उस स्थिति में पहुँचा देता है जैसे कि वास्तविक एजेन्सी की दशा में होते हैं।

2. अनाधिकृत रूप से किए गए कार्यों से एजेन्ट का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है और ये अधि कार के अन्तर्गत किए गए कार्यों का साथ ही प्रभाव रखते हैं।

3. पुष्टिकरण किये गए कार्यों एवं सेवाओं के लिए एजेन्ट, नियोक्ता से कमीशन एवं अन्य व्यय उसी प्रकार पाने का अधिकार है जैसे कि वह वास्तव में भी एजेन्ट था।

4. पुष्टिकरण के पश्चात् नियोक्ता एवं तृतीय पक्षकार के मध्य एक अनुबन्ध स्थापित हो जाने के कारण एजेन्ट तृतीय पक्षकार के प्रति अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

5. पुष्टिकरण पूर्व अधिकार जैसा है, यह एजेन्ट द्वारा किये गये कार्य की विधि से लागू होता है। ऐसी दशा में एजेन्सी उसी क्षण से प्रारम्भ समझी जाती है जबकि एजेन्ट कार्य करता है, न कि जब नियोक्ता द्वारा एजेन्ट के कार्य की पुष्टि की गई है। (धारा 196)

3.2.2 पुष्टिकरण से सम्बन्धित नियम

एक वैध पुष्टिकरण के लिए निम्नांकित विशेषताओं का होना जरूरी है –

(1) कार्य नियोक्ता के नाम में होना : एजेन्ट द्वारा किय गया कार्य नियोक्ता के नाम में उसके लिए (नियोक्ता) ही होना चाहिए यदि एजेन्ट ने अपने लिये अथवा अपने हिसाब में कार्य है तो उसका वैध पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता।

(2) नियोक्ता द्वारा पुष्टि : पुष्टिकरण उसी व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जिसकी ओर से अथवा जिसके नाम में कार्य किया गया है किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कार्य की पुष्टि का वैधानिक प्रभाव नहीं रखती। जैसे अ द्वारा ब के धन में से स को रूपये उधार दिया जाए और द, अ के कार्य की पुष्टि करें, यह मान्य न होगा।

(3) नियोक्ता का अस्तित्व : वैध पुष्टिकरण के लिए यह आवश्यक है कि अनुबन्ध करते समय नियोक्ता अस्तित्व में होना चाहिए तथा वह निश्चित किया जा सकने योग्य हो। इस आधार पर एक नव निर्मित कम्पनी अपने सम्मेलन से पहले, अपने प्रस्तावित संचालकों एवं प्रवर्तकों द्वारा किए गए कार्यों का वैध पुष्टिकरण नहीं कर सकती क्योंकि अनुबन्ध करते समय कम्पनी अस्तित्व में नहीं थी।[2]

(4) नियोक्ता में अनुबन्ध की क्षमता : नियोक्ता एजेन्ट द्वारा किए जाने वाले कार्य के दिन एवं पुष्टिकरण के दिन, दोनों की दिन अनुबन्ध करने से सक्षम होना चाहिए, क्योंकि पुष्टिकरण का प्रभाव एजेन्ट द्वारा किए कार्य के समय से ही होता है। यदि नियोक्ता एजेन्ट द्वारा कार्य किये जाने वाले दिन अनुबन्ध करने योग्य नहीं हो तो बाद में उसके अनुबन्ध करने में सक्षम होने पर भी उस कार्य का वैध पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता।

(5) कार्य वैधानिक होना चाहिए : नियोक्ता केवल उन्हीं कार्यों की पुष्टि कर सकता है जो वैध ही व्यर्थ और अवैध कार्यों की नहीं। इस आधार पर एक कम्पनी अपने संचालकों के उन कार्यो की पुष्टि नहीं कर सकती जो कम्पनी के पार्षद सीमानियम उद्देश्यों से बाहर हों, अत: व्यर्थ एवं दण्डनीय कार्यो का पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता। व्यर्थनीय कार्यों का पुष्टिकरण कुछ दशाओं में किया जा सकता है।'

(6) **महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी :** नियोक्ता को, जिसके द्वारा कार्य का पुष्टिकरण किया जाना है, सम्बन्धित मामले के समस्त तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए अन्यथा पुष्टिकरण मान्य न होगा। यदि नियोक्ता द्वारा यह सिद्ध कर दिया जाए कि पुष्टिकरण करते समय सम्बन्धित मामले की पूर्ण जानकारी नहीं थी तो वह ऐसे पुष्टिकरण से बाध्य नहीं होगा।

(7) **निश्चित समय :** यदि अनुबन्ध में कार्य करने का समय निश्चित है तो उसी समय के अन्तर्गत कार्य का पुष्टिकरण होना आवश्यक है। उक्त समय के व्यतीत हो जाने के बाद कार्य का पुष्टिकरण मान्य न होगा।

(8) **पूर्ण व्यवहार की पुष्टि :** पुष्टिकरण अनुबन्ध की सम्पूर्ण क्रिया का होना चाहिए उसके किसी अंश का नहीं। आंशिक पुष्टि मान न होना नियोक्ता कार्य के केवल उस अंश की पुष्टि नहीं कर सकता जो कि उसके लिये लाभदायक हो, उसके द्वारा व्यवहार के आंशिक भाग का पुष्टिकरण का प्रभाव सम्पूर्ण व्यवहार का ही पुष्टिकरण होगा।

(9) **तृतीय पक्ष की हानि :** यदि एक व्यक्ति द्वारा बिना अधिकार के कोई ऐसा कार्य किया जाए जो यदि अधिकार के साथ किया जाता तो उससे किसी तीसरे पक्ष के हितों को हानि पहुँचती अथवा उसके हिस्से अथवा अधिकारों पर कुप्रभाव पड़ता तो ऐसे कार्य का वैध पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता। (धारा 200)

उदाहरण – राम को रमेश से भूमि का एक पट्टा प्राप्त है जो तीन माह की अग्रिम सूचना देकर समाप्त किया जा सकता है। प्रभात अनाधिकृत रूप से राम को उसके पट्टे की समाप्ति की सूचना देता है रमेश प्रभात के इस कार्य का पुष्टिकरण नहीं कर सकता।

(10) **स्पष्ट अथवा गर्भित पुष्टिकरण :** नियोक्ता द्वारा पुष्टिकरण या तो स्पष्ट रूप से किया जा सकता है अथवा गर्भित रूप से हो सकता है।

(11) **पुष्टि की सूचना :** पुष्टि की सूचना उस पक्ष को अवश्य दी जानी चाहिए जो एजेन्ट द्वारा किए जाने वाले कार्य से बाध्य होगा।

3.3 एजेन्ट का अधिकार (Authority of an Agent)

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 186 के अनुसार एक एजेन्ट का अधिकार स्पष्ट या गर्भित हो सकता है।

(1) **स्पष्ट :** जब एजेन्ट का कोई अधिकार मुख से बोले हुए या लिखे हुए शब्दों द्वारा दिया जाता है तो ऐसा अधिकार स्पष्ट अधिकार कहलाता है।

(2) **गर्भित :** यदि कोई अधिकार किसी बात की परिस्थितियों से उत्पन्न होता है तो उसको गर्भित अधिकार कहेंगे। (धारा 187)

(3) **सामान्यतः एजेन्ट के अधिकार :** एक एजेन्ट को उस कार्य के सम्बन्ध में जिसके लिए वह नियुक्त किया गया है, आवश्यक प्रत्येक कार्य करने का अधिकार है। अतः यदि किसी व्यक्ति की नियुक्ति किसी व्यापार के संचालन हेतु की जाए तो वह व्यापार के लिए आवश्यक सभी वैधानिक कार्य कर सकता है अथवा वह ये सब कार्य कर सकता है जो उस व्यापार की सामान्य क्रियाओं की पूर्ति के लिए प्रायः किये जाते हैं।" (धारा 188)

उदाहरण के लिए 'ब' लंदन में रहता है उसने बम्बई में अपने एक ऋण को वसूल करने के लिए 'अ' को नियुक्त किया। 'अ' ऋण का भुगतान प्राप्त करने की प्रगति में कोई भी आवश्यक वैधानिक उपाय प्रयोग कर सकता है।

(4) **आपत्तिकालीन स्थिति में एजेन्ट के अधिकार :** आपत्ति के समय अपने नियोक्ता की हानि से रक्षा करने के लिये एजेन्ट को वे सब कार्य करने का अधिकार है जो एक सामान्य बुद्धि का व्यक्ति समान परिस्थितियों में अपने निजी मामले में करता, परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि आपत्तिकालीन स्थिति वास्तविक होनी चाहिए एवं एजेन्ट इस स्थिति में नहीं था वह इस विषय में नियोक्ता से कोई परामर्श प्राप्त कर सके। (धारा 189)

उदाहरण– विक्रय के लिये नियुक्त एजेन्ट माल की मुरम्मत करा सकता है; यदि ऐसा करना आवश्यक हो।

दिनेश बम्बई में अपने एजेन्ट सुरेश को कुछ फलों की टोकरियाँ इस आदेश के साथ भेजता है कि वह इन्हें प्राप्त होते ही 'वास्कोडिगामा' भेज दे। सुरेश फलों को बम्बई में ही बेच सकता है, क्योंकि पेटियाँ खराब हुए बिना 'वास्कोडिगामा' नहीं पहुँच सकती थी।[1]

3.3.1 एजेन्ट के अधिकार का हस्तांतरण (Delegation of Agent's Authority)

एक एजेन्ट वैधानिक रूप से उस कार्य को करने के लिये किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त नहीं कर सकता जिसके करने का भार स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से उसने अपने ऊपर ले लिया है। सिद्धान्त यह है कि 'एक एजेन्ट अपने अधिकार का और आगे हस्तांतरण नहीं करा सकता' परन्तु कुछ परिस्थितियों में एजेन्ट अपने समस्त या कुछ अधिकारों का किसी दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। जिस व्यक्ति को एजेन्ट द्वारा, अधिकारों का इस प्रकार हस्तांतरण किया जाता है, वह उप-एजेन्ट (Sub-Agent) अथवा स्थानापन्न एजेन्ट (Substituted Agent) कहलाता है।

उप-एजेन्ट : धारा 191 के अनुसार उप-एजेन्ट एक ऐसा व्यक्ति है जो एजेन्ट व्यापार में मूल एजेन्ट द्वारा उसी के नियंत्रण में, उसी का कार्य करने के लिये नियुक्त किया जाता है।[2] जैसे 'अ' ने 'ब' को अपना एजेन्ट किसी कार्य के लिए नियुक्त किया और 'ब' इस कार्य के लिये 'स' को नियुक्त कर देता है। 'स' उप-एजेन्ट है।

नियुक्ति की दशाएँ : 'एक एजेन्ट अपने अधिकारों का हस्तांतरण नहीं कर सकता' नामक सिद्धान्त के अपवाद धारा 190 में सन्निहित है अर्थात् केवल निम्नांकित दशाओं में ही उप-एजेन्ट की नियुक्ति वैधानिक होगी –

(i) नियोक्ता द्वारा अपने एजेन्ट को उप-एजेन्ट की नियुक्ति करने का स्पष्ट अधिकार दे दिया गया है।

(ii) व्यापार की साधारण प्रथानुसार उप-एजेन्ट की नियुक्ति की जा सकती है।

(iii) यदि एजेन्ट व्यापार का स्वभाव इस प्रकार का है कि उप-एजेन्ट की नियुक्ति आवश्यक हो और उसकी नियुक्ति के अभाव में कार्य संचालन कठिन हो।

(iv) अकस्मात् कोई आपातकालीन स्थिति उत्पन्न हो जाने पर।

(v) जबकि कार्य सीधा-सादा और लिपिकीय प्रकृति का है एवं जिसके लिये विशेष सूझ-बूझ एवं गोपनीयता की आवश्यकता न हो।

(vi) किसी अन्य उपर्युक्त परिस्थिति के अन्तर्गत जबकि एजेन्ट द्वारा ऐसी नियुक्ति आवश्यक हो।

3.3.2 नियोक्ता एजेन्ट तथा उप-एजेन्ट के मध्य वैधानिक स्थिति (Legal Position between Principal Agent and Sub-Agent) :

नियोक्ता व उप-एजेन्ट के मध्य वैधानिक स्थिति दो प्रकार से स्पष्ट हो सकती है -

(i) उप-एजेन्ट की नियुक्ति उचित रूप से होने पर

(अ) नियोक्ता का दायित्व : यदि उप-एजेन्ट की नियुक्ति उचित एवं अधिकृत रूप से हुई है तो ऐसी दशा ने उप-एजेन्ट मालिक का प्रतिनिधित्व ठीक उसी प्रकार से करेगा जैसे कि वह मुख्य एजेन्ट है। अतः जहाँ तक तृतीय पक्षकार का सम्बन्ध है नियोक्ता उप-एजेन्ट द्वारा किए गए कार्यो के लिये उसी प्रकार बाध्य तथा उत्तरदायी होगा जैसे कि वह मूल रूप से नियुक्त किए गए एजेन्ट के कार्यों से होता।

(ब) मूल एजेन्ट का दायित्व : व्यापार की प्रगति में नियुक्त किए गए एजेन्ट के कार्यों के लिये मूल एजेन्ट अपने नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है क्योंकि मूल एजेन्ट उप-एजेन्ट का नियोक्ता है।

(स) उप-एजेन्ट का दायित्व : उप-एजेन्ट की नियुक्ति क्योंकि मूल एजेन्ट द्वारा की जाती है, अतः वह अपने कार्यों के लिये एजेन्ट के प्रति ही उत्तरदायी होता है, नियोक्ता के प्रति नहीं। परन्तु यदि व्यापार के दौरान उप-एजेन्ट जानबूझ कर की गई त्रुटि अथवा कपट का दोषी है तो वह नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगी और ऐसी दशा में नियोक्ता, एजेन्ट व उप-एजेन्ट में दोनों के प्रति वाद प्रस्तुत कर सकता है। उप-एजेन्ट एवं नियोक्ता में कोई प्रत्यक्ष अनुबन्ध न होने के कारण उप-एजेन्ट पारिश्रमिक के लिए नियोक्ता पर वाद प्रस्तुत नहीं सकता और न नियोक्ता अपना पैसा प्राप्त करने के लिए उप-एजेन्ट पर वाद प्रस्तुत कर सकता है। दोनों ही एजेन्ट के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकते हैं क्योंकि एजेन्ट के माध्यम से ही नियोक्ता एवं उप-एजेन्ट में अप्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित होता है।

(ii) अनाधिकृत रूप से एजेन्ट नियुक्त होने पर :

यदि किसी एजेन्ट ने बिना किसी अधिकार के ही उप-एजेन्ट नियुक्त कर दिया है अर्थात् उप-एजेन्ट की नियुक्ति वैधानिक न हो तो नियुक्ति करने वाले एजेन्ट व उप-एजेन्ट का सम्बन्ध नियोक्ता एवं एजेन्ट की तरह होता है। अतः एजेन्ट उप-एजेन्ट के कार्यों के लिए नियुक्त व तीसरे पक्ष के ही प्रति उत्तरदायी होता है एवं ऐसे उप-एजेन्ट के कार्यों के लिए मूल नियोक्ता उत्तरदायी न होगा और न ही नियोक्ता ऐसी दशा में उप-एजेन्ट को उसके कपट के लिए उत्तरदायी ठहरा सकता है। किन्तु यदि अनाधिकृत उप-एजेन्ट की नियुक्ति का स्वामी वाद में पुष्टिकरण कर देता है तो वह उसके सभी कार्यों के लिये तीसरे पक्षकार के प्रति भी उत्तरदायी होगा। (धारा 193)

3.3.3 स्थानापन्न एंजेन्ट (Substituted Agent)

जब एक एजेन्ट ने नियोक्ता की ओर से कार्य करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नामांकित करने

का स्पष्ट अथवा गर्भित अधिकार रखते हुए इस प्रकार किसी व्यक्ति को एजेन्सी व्यापार में कार्य करने के लिए नामांकित कर दिया है तो ऐसा व्यक्ति स्थानापन्न एजेन्ट कहलाता है, उप-एजेन्ट नहीं।[1] ऐसा एजेन्ट नियोक्ता के नियन्त्रण में मूल एजेन्ट की तरह ही कार्य करता है और उसके कार्यों के लिए नियोक्ता बाध्य होता है। (धारा 194)

उदाहरण - 'अ' अपने वकील को अपनी भू-सम्पत्ति नीलाम द्वारा बिकवाने एवं एक नीलामकर्त्ता इस कार्य के लिये नियुक्त करने का आदेश देता है। वकील इस कार्य के लिए अशोक को नामांकित करता है। अशोक उप-एजेन्ट नहीं बल्कि भू-सम्पत्ति की बिक्री के लिये 'अ' का स्थानापन्न एजेन्ट है।

ऐसी स्थिति में एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि यह नियोक्ता के लिये स्थानापन्न एजेन्ट चुनने में पूर्ण सावधानी बरते, उतने बुद्धि विवेक से कार्य करे जितना सामान्य परिस्थितियों में एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति अपने स्वयं के विषय में करता है। यदि उसने स्थानापन्न एजेन्ट के चुनाव करने में पूर्ण विवेक एवं सावधानी से कार्य किया है तो वह चुने गए व्यक्ति के कार्यों के लिये लापरवाही के लिये उत्तरदायी न होगा। (धारा 194)

3.3.4 उप-एजेन्ट एवं स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर
(Difference between Sub-Agent and a Substituted Agent)

(1) उप-एजेन्ट की नियुक्ति तभी की जा सकती है जबकि व्यापार की साधारण प्रगति में सामान्यत: ऐसी नियुक्ति की जा सकती हो अथवा व्यापार का संचालन इसकी नियुक्ति बिना सम्भव न हो। स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति एजेन्ट द्वारा नियोक्ता से ऐसा गर्भित अथवा स्पष्ट अधिकार पाने के बाद की जा सकती है।

(2) उप-एजेन्ट नियोक्ता से अपने पारिश्रमिक की मांग नहीं कर सकता जबकि स्थानापन्न एजेन्ट नियोक्ता के ही अधीन कार्य करता है।

(3) उप-एजेन्ट नियोक्ता से अपने पारिश्रमिक की मांग नहीं कर सकता जबकि स्थानापन्न एजेन्ट नियोक्ता से पारिश्रमिक की मांग कर सकता है।

(4) उप-एजेन्ट के प्रति भी उत्तरदायी होता है, नियोक्ता के प्रति नहीं। स्थानापन्न एजेन्ट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है, एजेन्ट के प्रति नहीं।

(5) उप-एजेन्ट का नियोक्ता उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता जबकि स्थानापन्न एजेन्ट को नियोक्ता उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहरा सकता है।

3.4 अन्य व्यक्ति के साथ किये अनुबन्धों पर एजेन्सी का प्रभाव
(Effects of Agency on Contracts with Third Persons)

एजेन्सी के प्रभाव को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

(1) तृतीय पक्षकार के प्रति नियोक्ता का दायित्व

(2) एजेन्ट का व्यक्तिगत दायित्व

(3) बनावटी एजेन्ट का दायित्व।

3.4.1 तृतीय पक्षकार के प्रति नियोक्ता का दायित्व (Principal's Liability of Third Parties)

जो कार्य एजेन्ट द्वारा किए जाते हैं सभी लगभग स्वामी के अधिकार के अन्तर्गत किए जाते हैं, चाहे इन कारणों का पुष्टिकरण बाद में किया गया हो या प्रधान की सहमति से किए गए हों। ऐसे सभी कार्यों के लिये नियोक्ता उत्तरदायी होगा ये उत्तरदायित्व इस प्रकार है –

(i) एजेन्ट के वास्तविक, प्रत्यक्ष एवं गर्भित अधिकारों की सीमा के अन्दर एजेन्ट द्वारा किए गए कार्यों के लिए प्रधान का उत्तदायित्व : इस अधिकार के अन्तर्गत प्रधान का अधिकार एजेन्ट द्वारा किए गए केवल उन कार्यों तक ही नहीं है जिनका करने के लिए वह स्वामी द्वारा वास्तव में अधिकृत है बल्कि एजेन्ट के उन कार्यों तक भी प्रधान का दायित्व है जो अधिकृत कार्यों को करने के लिए आवश्यक है। यदि नियोक्ता अपने एजेन्ट को सीमित अधिकार देता है और तीसरे पक्षकार को इसकी जानकारी है तो नियोक्ता एजेन्ट द्वारा इन सीमित अधिकारों के बाहर किए जाने वाले कार्यों के लिए भी उत्तरदायी होगा। जैसे 'अ', 'ब' को कुछ सामान बेचने को देता है किन्तु गुप्त रूप से उसको यह आदेश देता है कि सामान उधार न बेचे और 'ब', 'स' को सामान उधार बेच देता है और 'स' को इस बात की जानकारी नहीं कि उसने उधार सामान बेचने से इन्कार किया है तो 'अ' ऐसी बिक्री के लिए बाध्य होगा।

जब एजेन्ट नियोक्ता द्वारा किए गए अधिकारों के बाहर कोई कार्य करता है तो नियोक्ता को यह अधिकार है कि वह ऐसे अनाधिकृत कार्यो को समाप्त कर दे या उनकी पुष्टि कर दे। पुष्टि करने पर वह उन कार्यों के लिए उसी प्रकार उत्तरदायी होगा जिस पर वह अधिकारों के अन्तर्गत किए गए कार्यों के प्रति उत्तरदायी होता है। (धारा 227)

जब एजेन्ट अपने अधिकार से अधिक कार्य करता है और यह अधिक कार्य अधिकृत कार्यों से अलग किया जा सकता है तो नियोक्ता केवल अधिकृत कार्यो के लिए ही उत्तरदायी होगा। यदि वे अधिक कार्य अधिकृत कार्यो से अलग नहीं किए जा सकते तो नियोक्ता अधिकृत कार्यो के लिए भी उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। (धारा 228)

उदाहरण के लिए 'अ', 'ब' से 5000 रुपये का जहाज का बीमा कराने के लिए कहता है। 'ब' ने 5000 रुपये का जहाज का बीमा करा दिया है किन्तु वह साथ ही साथ 4000 रुपये का बीमा जहाज में लदे सामान का भी करा देता है। ऐसी दशा में 'अ', 'ब' केवल जहाज के बीमे के लिए ही प्रीमियम देने को बाध्य है सामान के बीमे के लिए नहीं।

राम श्याम को 200 भेड़ खरीदने को कहता है। श्याम 200 भेड़ खरीदने के साथ-साथ 100 मेमने भी 500 रुपये में खरीद लेता है। ऐसी दशा में राम सारे सौदे को निरस्त कर सकता है क्योंकि यहाँ मेमने भेड़ों से अलग नहीं किए जा सकते।

(ii) एजेन्सी के काल में एजेन्ट को दी गई सूचना के लिए नियोक्ता का उत्तरदायित्व : तृतीय पक्ष द्वारा यदि एजेन्ट को कोई सूचना दी गई है तो वह नियोक्ता को दी गई सूचना ही मानी जाती है उसके लिये नियोक्ता उत्तरदायी होता है। किन्तु नियोक्ता को उत्तरदायी ठहराने के लिये यह आवश्यक है कि सूचना उसी व्यापार के सम्बन्ध में होनी चाहिए जिसके लिए एजेन्ट की नियुक्ति की गई है।

(iii) एजेन्सी काम में एजेन्ट द्वारा किए गए कपट या मिथ्या वर्णन के लिये नियोक्ता का दायित्व: यदि एक एजेन्ट नियोक्ता का कार्य करते समय किसी कपट या मिथ्यावर्णन का उपयोग करता है तो वैधानिक

रूप से यह माना जाएगा कि यह कपट या मिथ्यावर्णन नियोक्ता द्वारा ही किया गया है। (धारा 238)

यदि एजेन्ट मिथ्यावर्णन या कपट का उपयोग किसी ऐसे कार्य के लिए कार्य करता है तो प्रधान द्वारा दिए गए अधिकार के अन्तर्गत नहीं आता तो प्रधान ऐसी देशा में ऐसे कपट या मिथ्यावर्णन के लिये उत्तरदायी नहीं होगा।

उदाहरण : क्योंकि सामान बेचने के लिये 'ब' का एजेन्ट है 'स' को मिथ्यावर्णन के द्वारा सामान ऐसा खरीदने के लिए उकसाता है जिसके लिए 'अ', 'ब' द्वारा अधिकृत नहीं था। ऐसी दशा में अनुबन्ध 'ब' और 'स' के बीच 'स', की इच्छा पर व्यर्थनीय है।

(iv) एजेन्सी काल एजेन्ट द्वारा स्वीकार की गई बात के लिये नियोक्ता का दायित्व : जब किसी बात को एक एजेन्ट स्वीकार कर लेता है तो यह बात नियोक्ता द्वारा स्वीकार मानी जाती है और उसके लिए वह उत्तरदायी होता है। एक केस में एक मुसाफिर ने रेल में अपना सामान खो दिया जिसके परिणामस्वरूप स्टेशन मास्टर ने पुलिस में यह सूचना दी कि कुली सामान लेकर भाग गया। जज महोदय ने यह निर्णय दिया कि स्टेशन मास्टर द्वारा स्वीकार की गई बात रेलवे कम्पनी द्वारा स्वीकार की हुई मानी जाएगी क्योंकि स्टेशन मास्टर रेलवे कम्पनी का एजेन्ट माना जाता है और वह स्वयं ही कह रहा है कि सामान कुली लेकर भाग गया इसलिए इस सामान का मूल्य चुकाने के लिए रेलवे कम्पनी उत्तरदायी होगी।

(v) एजेन्ट द्वारा प्रधान द्वारा अधिकार के बिना तीसरे पक्ष के प्रति किए गए कार्य के लिए नियोक्ता का उत्तरदायित्व : जब एक एजेन्ट बिना अधिकार के कोई कार्य तीसरे पक्षकारों के प्रति करता है तो नियोक्ता ऐसे कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा यदि उसने अपने शब्दों अथवा आचरण द्वारा तीसरे पक्षकारों को यह विश्वास दिला दिया है कि इस प्रकार के कार्यों के लिए एजेन्ट को अधिकार था। (धारा 237)

(vi) एजेन्ट द्वारा नियोक्ता के हितों के प्रतिकूल अधिकृत कार्य करने पर जो नियोक्ता का उत्तरदायित्व : यदि एजेन्ट अपने अधिकार के अन्तर्गत कार्य कर रहा है परन्तु वह कार्य नियोक्ता के हित के विरुद्ध है तो ऐसी दशा में यदि तीसरा पक्ष सद्भावना से कार्य कर रहा है तो नियोक्ता ऐसे कार्य के लिए भी उत्तरदायी होगा यद्यपि वह कार्य उसके हित के विरुद्ध है क्योंकि एजेन्ट अपना कार्य अधिकार के अन्तर्गत कर रहा है।

उदाहरण : 'अ', 'ब' को कुछ वस्तुएँ 10 रुपये प्रति वस्तु के हिसाब से बेचने के लिये देता है। पूरा सामान बिकने से पहले वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है। परन्तु 'ब' 'अ' के आदेशानुसार 10 रुपये में ही बेच रहा है तो इसके लिए 'अ' उत्तरदायी होगा यद्यपि वह उसके हित के विरुद्ध है क्योंकि 'ब' तो 'अ' के आदेशानुसार ही कार्य कर रहा है।

(vii) एजेन्ट द्वारा बिना नाम के नियोक्ता की ओर से अनुबन्ध करने का दायित्व : जब एजेन्ट द्वारा तृतीय पक्ष को यह स्पष्ट कर दिया गया हो कि वह केवल एक एजेन्ट के रूप में ही कार्य कर रहा है किन्तु अपने नियोक्ता का नाम तथा विवरण प्रकट नहीं करता तो नियोक्ता एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यो के लिए उत्तरदायी होगा, एजेन्ट का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होगा। तृतीय पक्ष नियोक्ता के विरुद्ध ही कार्यवाही कर सकता है एजेन्ट के विरुद्ध नहीं। यदि इसके विपरीत कोई अनुबन्ध या व्यापारिक प्रथा न रही हो परन्तु यदि एजेन्ट से तृतीय पक्ष द्वारा, नियोक्ता के नाम पते का विवरण पूछने पर भी वह नहीं बताता है तो एजेन्ट स्वयं ही उत्तरदायी होगा'।

(viii) एजेन्ट द्वारा अप्रकट नियोक्ता की ओर से अनुबन्ध किये जाने पर दायित्व : यदि कोई एजेन्ट किसी ऐसे व्यक्ति के साथ अनुबन्ध करता है जो यह नहीं समझता कि वह एजेन्ट है और न ही ऐसा समझने के लिये उचित आधार रखता है तो ऐसे एजेन्ट का नियोक्ता 'अप्रकट नियोक्ता' कहलाता है। इस स्थिति में तृतीय पक्ष एजेन्ट को एजेन्ट न समझकर बल्कि नियोक्ता समझकर अनुबन्ध करता है। ऐसा निम्न दशाओं में होता है -

- जब एजेन्ट अपने आचरण द्वारा यह प्रकट कर देता है कि वह स्वयं ही मुख्य पक्षकार है और किसी दूसरे की ओर से कार्य नहीं कर रहा।
- जब एजेन्ट अपने नियोक्ता का नाम प्रकट नहीं करता और नियोक्ता भी स्वयं अप्रकट रहे।
- जब एजेन्ट स्वयं अपने नाम में ही अनुबन्ध करे।

यदि एक व्यक्ति एजेन्ट को एजेन्ट न समझकर नियोक्ता समझकर उसके साथ अनुबन्ध कर रहा है तो उसको एजेन्ट के विरुद्ध ये सब अधिकार प्राप्त होंगे जो एजेन्ट के वास्तव में नियोक्ता होने पर प्राप्त होते। अतः अनुबन्ध एजेन्ट द्वारा अथवा उसके विरुद्ध प्रवर्दनीय होगा। यदि तृतीय पक्षकार को न्यायालय का निर्णय प्राप्त होने से पहले ही नियोक्ता के अस्तित्व का पता लग जाए तो वह नियोक्ता, एजेन्ट अथवा दोनों पर वाद प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु नियोक्ता पर वाद प्रस्तुत करने की दशा में एजेन्ट से प्राप्त राशि का लाभ नियोक्ता को देना पड़ेगा। (धारा 231)

उदाहरण : राम दिनेश को 50 बोरी चावल 8000 रुपये में देने का अनुबन्ध करता है और 1000 रुपये अग्रिम के रूप में प्राप्त कर लेता है। राम को पता चलता है कि दिनेश तो कमल के एजेन्ट के रूप में कार्य कर रहा था। वह कमल पर अनुबन्ध निष्पादन का वाद प्रस्तुत कर सकता है परन्तु उसे दिनेश से प्राप्त 1000 रुपये का लाभ कमल को देना होगा। अतः वह कमल पर 7000 रुपये के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

नियोक्ता चाहे तो अनुबन्ध पूरा होने से पूर्व ही अपने आपको प्रकट कर सकता है। ऐसी दशा में तृतीय पक्षकार चाहे तो अनुबन्ध पूरा करने से इन्कार कर सकता है, यदि वह यह प्रमाणित कर दे कि यदि वह पहले ही नियोक्ता के बारे में जानता होता, तो वह उसके साथ अनुबन्ध नहीं करता। तृतीय पक्षकार को यह अधिकार तभी प्राप्त होगा जब नियोक्ता ने स्वयं अपने आपको प्रकट कर दिया हो। यदि तृतीय पक्ष को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा किसी अन्य साधन द्वारा नियोक्ता के बारे में सूचना प्राप्त हुई है तो वह अनुबन्ध के निष्पादन करने से इन्कार नहीं कर सकता। (धारा 231)

प्रकट हो जाने के बाद यदि अप्रकट नियोक्ता तृतीय पक्ष से अनुबन्ध के निष्पादन की माँग करे तो ऐसा एजेन्ट एवं तृतीय पक्ष के बीच विद्यमान अधिकार एवं दायित्वों को पूरा करने की शर्त पर ही प्राप्त कर सकता है। (धारा 232)

निर्वाचन का अधिकार : ऐसी सभी स्थितियों में जिनमें एक एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, उसके साथ व्यवहार करने वाला कोई भी व्यक्ति या तो एजेन्ट को अथवा उसके नियोक्ता अथवा नियोक्ता व एजेन्ट दोनों के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है। तृतीय पक्ष के इस अधिकार को निर्वाचन का अधिकार कहते हैं। (धारा 233)

उदाहरण : 'अ', 'ब' को 50 बोरे गेहूँ के बेचने का अनुबन्ध करता है। उसे पता चलता है कि 'ब', 'स' के एजेन्ट के रूप में कार्य कर रहा था। 'अ' गेहूँ का मूल्य प्राप्त करने के लिए 'ब' अथवा 'स' दोनों को दायी ठहराने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

परन्तु यदि व्यवहार करने वाला व्यक्ति एजेन्ट को विश्वास पर कार्य करने के लिए प्रेरित करे कि केवल नियोक्ता ही दायी ठहराया जाएगा अथवा नियोक्ता को इस विश्वास पर कार्य करने के लिए प्रेरित करे कि केवल एजेन्ट ही उत्तरदायी ठहराया जाएगा तो वह इसके बाद क्रमश: एजेन्ट या नियोक्ता को दायी नहीं ठहरा सकता अर्थात् उनका निर्वाचन का अधिकार समाप्त हो जाता है। (धारा 234)

3.4.2 बनावटी एजेन्ट का दायित्व (Liability of Pretended Agent)

यदि कोई व्यक्ति, जो कि किसी का एजेन्ट नहीं है, झूठे ही अपने आपको किसी का एजेन्ट बताता है, तो ऐसा व्यक्ति बनावटी एजेन्ट कहलाता है। अधिनियम में ऐसे एजेन्ट के निम्न दायित्व हैं -

(i) यदि एक व्यक्ति जो एक एजेन्ट न होते हुए भी अपने को किसी का अधिकृत एजेन्ट प्रदर्शित करके किसी अन्य व्यक्ति के साथ अनुबन्ध कर लेता है अथवा अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करता है तो स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

(ii) यदि उस एजेन्ट का बनावटी नियोक्ता पुष्टिकरण कर देता है तो बनावटी एजेन्ट अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। (धारा 235)

(iii) बनावटी एजेन्ट पुष्टिकरण के अभाव में केवल वास्तविक हानि की पूर्ति के लिए उत्तरदायी होता है।

(iv) यदि बनावटी एजेन्ट, एजेन्ट के रूप में नहीं बल्कि अपने निज के लिए व्यवहार कर रहा था तो तृतीय पक्ष से अनुबन्ध के निष्पादन की मांग नहीं कर सकता। (धारा 236)

3.4.3 एजेन्ट का व्यक्तिगत दायित्व (Personal Liability of an Agent) :

निम्न परिस्थितियों में एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(i) विदेशी नियोक्ता : यदि एजेन्ट एक ऐसे नियोक्ता की ओर से अनुबन्ध कर रहा है जोकि विदेश में रहता है तो तृतीय पक्षकार एजेन्ट के विरुद्ध कार्यवाही कर सकते हैं और एजेन्ट भी तृतीय पक्षकार के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है अर्थात् एजेन्ट अनुबन्ध के निष्पादन के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(ii) अप्रकट नियोक्ता : यदि एजेन्ट अपने नियोक्ता का नाम प्रकट नहीं करता न ही तृतीय पक्षकार के पास कोई साधन है जिससे वह नियोक्ता के बारे में जान सके तो ऐसी स्थिति में भी एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(iii) नियोक्ता पर वाद प्रस्तुत न किये जा सकने पर : यदि एजेन्ट किसी अवयस्क, विदेशी शासक, राजदूत की ओर से अनुबन्ध कर रहा हो जिनका नाम प्रकट किए जाने पर भी कानूनी रूप से वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तो ऐसी स्थिति में भी एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से ही उत्तरदायी होगा।

(iv) **अपने नाम से अनुबन्ध करने पर :** जब एजेन्ट अपने नाम से अनुबन्ध करता है तो यह प्रकट नहीं करता कि वह एजेन्ट के रूप से कार्य कर रहा है तो वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

(v) **समझौते द्वारा दायित्व :** जब एजेन्ट ने किसी अनुबन्ध द्वारा स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से अनुबन्ध के लिए अपना व्यक्तिगत दायित्व स्वीकार कर लिया हो।

(vi) **अधिकार के बाहर के कार्य करने पर :** यदि एजेन्ट अपने स्पष्ट अथवा गर्भित अधिकारों की सीमा के बाहर कार्य करता है अथवा कोई छल-कपट करता है तो वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(vii) **अविद्यमान नियोक्ता के लिये कार्य करने पर :** यदि कोई एजेन्ट किसी ऐसे नियोक्ता के लिये कार्य करता है जो विद्यमान ही नहीं है, तो उसके लिए वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। जैसे ऐसी कम्पनी के प्रवर्त्तकों द्वारा कम्पनी की ओर से किए गए अनुबन्ध जिनका अभी समामेलन ही नहीं हुआ है, के लिए प्रवर्तक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते हैं।

(viii) **अनुबन्ध में हित :** तृतीय पक्ष से किए गए अनुबन्ध की विषय वस्तु में यदि एजेन्ट का स्वयं कोई हित है तो वह अपने हित के अंश तक स्वयं वाद प्रस्तुत कर सकता है और उस पर भी वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।

(ix) **व्यापारिक रीति-रिवाज :** यहाँ एजेन्ट के व्यक्तिगत दायित्व का निर्माण व्यापारिक रीति-रिवाज अथवा प्रथा के आधार पर होता है तो किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में उसका व्यक्तिगत दायित्व व्यापारिक रीति-रिवाज तथा प्रथा के अनुसार होगा।

(x) **किसी को क्षति पहुँचाने पर :** अपने अधिकारी के बाहर कार्य करते हुए यदि एजेन्ट किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को हानि पहुँचाता है तो वह व्यक्तिगत रूप से दायी होगा। परन्तु यदि यह क्षति अधिकारों के अन्दर कार्य करते हुए पहुँचाई गई है तो एजेन्ट व नियोक्ता पृथक्-पृथक अथवा संयुक्त रूप से उत्तरदायी होंगे।

3.5 एजेन्सी की समाप्ति (Termination of Agency)

धारा 201 के अनुसार एवं एजेन्ट के बीच का सम्बन्ध निम्नानुसार समाप्त किया जा सकता है -

(1) पक्षकारों द्वारा समाप्ति : पक्षकारों द्वारा एजेन्सी अनुबन्ध की समाप्ति के तीन ढंग प्रचलित हैं-

(अ) नियोक्ता द्वारा एजेन्ट के अधिकार का खण्डन करके एजेन्सी समाप्त की जा सकती है परन्तु कुछ दशाओं में खण्डन नहीं किया जा सकता -

(i) हित सहित एजेन्सी की दशा में : यदि एजेन्सी की विषय वस्तु में एजेन्ट का स्वयं का कोई हित निहित है और किसी स्पष्ट अनुबन्ध के अभाव में यदि उपरोक्त हित को किसी प्रकार की हानि पहुँचती है तो नियोक्ता द्वारा ऐसे हित को हानि पहुँचाने के लिए एजेन्सी की समाप्ति नहीं की जा सकती। (धारा 202)

उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' को अपनी भूमि बेचने एवं प्राप्त राशि में से अपने ऋण के शोधन का अधिकार देता है। 'अ' इस अधिकार का खण्डन नहीं कर सकता क्योंकि इसके एजेन्ट का हित भी सम्मिलित है।

(ii) एजेन्ट द्वारा अधिकार का आंशिक प्रयोग : यदि एजेन्ट ने अपने अधिकार का थोड़ा प्रयोग कर लिया है तो एजेन्सी उसके द्वारा किए गए कार्यों के लिए समाप्त नहीं की जा सकती।

जैसे रमेश, दिनेश को उसके पास अपने जमा धन में से 2000 रुपये दो बराबर किश्तों में महेश को देने का आदेश देता है। तत्पश्चात् रमेश, दिनेश के इस अधिकार का खण्डन कर देता है। परन्तु इसके पूर्व ही दिनेश, महेश को प्रथम किश्त के 1000 रुपये दे चुका था। अत: दिनेश द्वारा महेश को दिए गए 1000 रुपये के लिए रमेश उत्तरदायी होगा।

(iii) जब ऐजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हो – यदि ऐजेन्ट ने अपने नाम से तृतीय पक्षकारों के साथ अनुबन्ध करके अपने आपको व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बना लिया हो तो नियोक्ता द्वारा ऐजेन्ट के अधिकार का खण्डन नहीं किया जा सकता है।

(ब) एजेन्ट द्वारा समाप्ति : एजेन्ट अपने अधिकार का परित्याग करने की सूचना नियोक्ता को देकर एजेन्सी की समाप्ति कर सकता है।

(स) नियोक्ता एवं एजेन्ट के बीच पारस्परिक ठहराव द्वारा : एजेन्सी की समाप्ति नियोक्ता एवं एजेन्ट की पारस्परिक सहमति किसी भी समय एवं किसी भी व्यवस्था में की जा सकती है और ऐसा करने में किसी प्रकार की वैधानिक अड़चने नहीं है। ठहराव द्वारा ही एजेन्सी उत्पन्न होती है और ठहराव द्वारा ही समाप्त की जा सकती है।

(2) राजनियम द्वारा समाप्ति

(i) एजेन्सी व्यापार पूरा हो जाने पर : यदि एजेन्सी की स्थापना किसी विशेष कार्य के लिये की गई है तो उस कार्य के पूरा हो जाने पर एजेन्सी स्वयं ही समाप्त हो जाती है।

(ii) निश्चित अवधि की समाप्ति पर : यदि एजेन्सी की स्थापना किसी निश्चित अवधि के लिए की गई है तो उस अवधि के समाप्त हो जाने के बाद एजेन्सी समाप्त हो जाती है, चाहे कार्य पूरा हो गया हो अथवा नहीं। निश्चित अवधि के पश्चात् यदि एजेन्ट, नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करता है तो वह उत्तरदायी न होगा। (धारा 201)

(iii) नियोक्ता अथवा एजेन्ट की मृत्यु अथवा पागल होने पर : नियोक्ता अथवा एजेन्ट, किसी की भी मृत्यु हो जाने अथवा पागल हो जाने पर एजेन्सी समाप्त हो जाती है। नियोक्ता की मृत्यु अथवा पागल हो जाने की दशा में जब तक एजेन्ट को इस आशय की सूचना नहीं मिल जाती, वह नियोक्ता का प्रतिनिधित्व कर सकता है। जब एजेन्सी नियोक्ता की मृत्यु या पागल हो जाने के कारण समाप्त होती है तो एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि वह नियोक्ता एवं उसके उत्तराधिकारियों के हितों की रक्षार्थ समुचित व्यवस्था करे। (धारा 209)

(iv) नियोक्ता के दिवालिया होने पर : नियोक्ता के दिवालिया होने पर जहाँ तक एजेन्ट का सम्बन्ध है एजेन्सी तुरन्त ही समाप्त हो जाती है। दिवालिया नियोक्ता के जितने भी एजेन्ट हैं उन सबके अधिकारों का अन्त हो जाता है। जहाँ तक तीसरे पक्षकारों का सम्बन्ध है उन्हें नियोक्ता के दिवालियों होने की जानकारी होने की तिथि से एजेन्सी का अन्त हो जाता है। परन्तु एजेन्ट के दिवालिया होने पर एजेन्सी समाप्त नहीं होती।

(v) विषय वस्तु के नष्ट होने पर : जब वह वस्तु ही नष्ट हो जाए जिसके लिए एजेन्सी की स्थापना की गई थी तो एजेन्सी भी समाप्त हो जाती है। जैसे किसी मकान, घोड़े या अन्य किसी वस्तु के विक्रय के लिए एजेन्सी स्थापित की जाए और विक्रय से पूर्व ही वह वस्तु नष्ट हो जाए। (धारा 201)

(vi) नियोक्ता के विदेशी शत्रु बन जाने पर : यदि एजेन्ट एवं नियोक्ता के देश के बीच परस्पर युद्ध छिड़ जाए तो नियोक्ता विदेशी शत्रु माना जाता है ऐसी दशा में एजेन्सी भी समाप्त मानी जाती है।

(vii) कम्पनी की समाप्ति पर : यदि नियोक्ता अथवा एजेन्ट एक संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी के रूप में है तो कम्पनी की समाप्ति पर एजेन्सी भी समाप्त हो जाती है क्योंकि कम्पनी समाप्त होते ही उसके समस्त अधिकार भी समाप्त हो जाते हैं।

3.6 नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के कर्त्तव्य (Duties of an Agent to his Principal)

(1) नियोक्ता के आदेशों का पालन करना : एजेन्ट नियोक्ता के लिये उसके नाम से कार्य करता है अतः उसके आदेशों के अनुकूल ही एक एजेन्ट को व्यवहार करना चाहिए। आदेशों के अभाव में उसे व्यापार विशेष की रीति एवं स्थानीय व्यापारिक प्रथाओं के अनुरूप कार्य करना चाहिए। यदि एजेन्ट ने एजेन्सी व्यापार में कोई लाभ प्राप्त कर लिया है तो उसका हिसाब उसे नियोक्ता को देना होगा। (धारा 211)

(2) दक्षता, लगन एवं परिश्रम से कार्य करना : एजेन्ट को अपने कर्त्तव्य उतने ही कौशल, चतुरता एवं निष्ठा के साथ सम्पन्न करने चाहिए जितने कि समान परिस्थितियों में एक सामान्य व्यक्ति से अपने स्वयं के विषय में अपेक्षा की जा सकती है। एजेन्ट द्वारा अपने कर्त्तव्य करते समय साधारण चतुराई अथवा परिश्रम का उपयोग किया गया है या नहीं, न्यायालय यह सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर निर्धारित करता है। (धारा 212)

(3) उचित लेखा प्रस्तुत करना : एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यवहार का पूरा-पूरा व उचित हिसाब रखे एवं आवश्यक हों तो प्रमाणक भी उसके साथ नत्थी कर दे। नियोक्ता द्वारा मांगे जाने पर प्रत्येक व्यवहार से सम्बन्धित हिसाब प्रस्तुत करे। नियोक्ता को उसके बारे में सन्तोष प्रदान करे। यदि एजेन्ट द्वारा कर्त्तव्य का उल्लंघन किया जाता है तो नियोक्ता उस पर हिसाब-किताब के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। (धारा 218)

(4) आपत्तिकाल में नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित करना : आपत्तिकाल में अथवा किसी कठिनाई की दशा में एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि वह नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित करे एवं आवश्यक आदेश प्राप्त करे, यदि वह नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित करने की स्थिति में है। यदि वह नियोक्ता से सम्पर्क स्थापित करने की स्थिति में नहीं है तो उसे साधारण बुद्धि-विवेक का उपयोग करना चाहिए अन्यथा वह नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा। (धारा 214)

(5) निज के हिसाब में व्यवहार न करना : एक एजेन्ट को बिना नियोक्ता की अनुमति लिए एजेन्सी के व्यवसाय में अपने स्वयं के हिसाब में कोई व्यवहार नहीं करना चाहिए। यदि यह प्रकट होता है कि एजेन्ट द्वारा कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य बेईमानी से छिपाया गया है अथवा नियोक्ता को इससे कोई हानि पहुँचती है तो नियोक्ता को ऐसे व्यवहार निरस्त करने का अधिकार है। (धारा 215)

यदि एजेन्ट द्वारा विपक्ष की जानकारी व बिना एजेन्सी व्यापार में अपने निज के लिए कोई व्यवहार करने के परिणामस्वरूप कोई लाभ प्राप्त किया गया है तो नियोक्ता उस लाभ को प्राप्त कर सकता है। (धारा 216)

(6) नियोक्ता के लिये प्राप्त राशि का भुगतान करना : नियोक्ता के हिसाब में जो भी धन एजेन्ट को अन्य पक्षों से प्राप्त हो, उसका कर्त्तव्य है कि वह उसे नियोक्ता को दे दें। यदि व्यापार चलाने के लिये उसके द्वारा कोई एडवांस दिया गया है या उचित खर्चे किये गए हैं तो वह अपने इस एडवांस व खर्चे को काट सकता है और शेष राशि नियोक्ता को देने के लिये उत्तरदायी है। (धारा 217-218)

(7) अधिकार का हस्तान्तरण न करना : प्रत्येक एजेन्ट को अपने कर्त्तव्यों को स्वयं ही निभाना चाहिए एवं अपने अधिकार का प्रत्यावर्तन अथवा हस्तान्तरण नहीं करना चाहिए जब तक कि उसे ऐसा करने का स्पष्ट अधिकार नियोक्ता द्वारा प्रदान नहीं कर दिया गया हो।

(8) प्राप्त सूचना का नियोक्ता के विरुद्ध प्रयोग न करना : एजेन्ट का कर्त्तव्य है कि एजेन्सी के दौरान मिली सभी सूचनाओं को वह नियोक्ता तक पहुँचाये। एजेन्ट द्वारा इन सूचनाओं का उपयोग नियोक्ता के हितों के विरुद्ध करने से यदि नियोक्ता को कोई हानि उठानी पड़ती है तो एजेन्ट क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा।

(9) विपरीत अधिकार स्थापित न करना : एजेन्सी के अन्तर्गत नियोक्ता से प्राप्त माल पर एजेन्ट को अपना या किसी अन्य पक्ष का अधिकार स्थापित नहीं होने देना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो परिवर्तन के लिये वह उत्तरदायी होगा।

(10) गुप्त लाभ प्राप्त न होना : अपने कमीशन या पारिश्रमिक के अतिरिक्त नियोक्ता की जानकारी के बिना एक एजेन्ट की एजेन्सी व्यवहार के अन्तर्गत अन्य किसी प्रकार का गुप्त लाभ प्राप्त नहीं करना चाहिए अन्यथा नियोक्ता उसे वसूल कर सकता है।

3.7 एजेन्ट के अधिकार (Right of Agents)

(1) प्राप्त धन को रोकने का अधिकार : यदि एजेन्ट ने नियोक्ता के आदेशानुसार अथवा व्यापार की सामान्य प्रथा के अनुसार कोई व्यय, व्यापार के अन्तर्गत किए हैं अथवा कोई धन अग्रिम रूप में अन्य पक्षों को दिया है तो ऐसे समस्त व्ययों एवं अपने कार्य के पारिश्रमिक के लिये नियोक्ता के नाम से अन्य पक्षों से प्राप्त धनराशि में से काट सकता है, परन्तु कोई भी एजेण्ट एक व्यापार से प्राप्तधन को दूसरे व्यापार से दिये कमीशन के लिए नहीं रोक सकता चाहे दोनों व्यापार एक ही नियोक्ता की ओर से क्यों न किये गये हों। (धारा 217)

(2) पारिश्रमिक पाने का अधिकार : एजेन्ट को यह अधिकार है कि वह अपने किए गए कार्यों के लिए पारिश्रमिक प्राप्त कर सकता है। किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में एजेन्ट निश्चित कार्य की समाप्ति से पहले पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकारी नहीं होता। यदि पारिश्रमिक निश्चित नहीं किया गया है तो वह उचित पारिश्रमिक प्राप्त करेगा, किन्तु दुराचरण का दोषी होने की दशा में दुराचरण से सम्बन्धित भाग के लिये उसे कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

उदाहरण : 'अ' ने 'ब' से अपने 500 रुपये प्राप्त करने के लिये 'स' को एजेन्ट नियुक्त किया परन्तु 'स' के दुराचरण के कारण रुपया प्राप्त न हो सका। 'स' कोई पारिश्रमिक पाने का अधिकारी नहीं है।

(3) माल पर पूर्वाधिकार : किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में एजेन्ट अपना पारिश्रमिक व अन्य उचित व्ययों के भुगतान के लिए एजेन्ट का माल, चल अचल सम्पत्ति, प्रपत्र आदि उस समय तक रोक कर रख सकता है जब तक कि उसको इन सबका भुगतान प्राप्त न हो जाए। (धारा 221)

(4) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार : एजेन्ट ने यदि अपने धन से नियोक्ता के लिए माल खरीदा है अथवा माल के मूल्य के लिये अपना व्यक्तिगत दायित्व दिया है तो एजेन्ट अपने नियोक्ता के विरुद्ध एक अदत्त विक्रेता के रूप में होता है और इसी कारण उसे वाहक को नियोक्ता के पास पहुँचने के लिए दिए गए माल को, मार्ग में ही रोकने का अधिकार होता है।

(5) क्षतिपूर्ति का अधिकार :

(अ) वैध कार्यों के सम्बन्ध में हुई हानि : यदि एजेन्सी संचालन में वैध कार्यों के करने के परिणामस्वरूप एजेन्ट को कोई क्षति उठानी पड़ी है तो वह नियोक्ता से ऐसी हानि की क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है परन्तु अवैध कार्यों के लिए नहीं। (धारा 222)

(ब) सद्भावना से कार्य करने पर : यदि एजेन्ट ने पूर्ण सद्भावना से कार्य किया है और उन कार्यों के परिणामस्वरूप उसे कुछ क्षति उठानी पड़ी हो तो वह नियोक्ता से ऐसी क्षति की पूर्ति भी करवा सकता है चाहे तीसरे पक्ष के हितों को हानि क्यों न पहुँचती हो, परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि कार्य नियोक्ता के लिए एजेन्ट द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत किया गया हो।[2]

जब कोई व्यति किसी व्यक्ति को दण्डनीय कार्यों के लिए नियुक्त करता है तो उन कार्यों के परिणामों के लिए नियोक्ता उत्तरदायी नहीं है चाहे उसने एजेन्ट की हानि रक्षा का स्पष्ट अथवा गर्भित वचन ही क्यों न दे दिया हो। (धारा 224)

(6) नियोक्ता की उपेक्षा एवं चतुराई के अभाव में : यदि नियोक्ता की उपेक्षा, अकुशलता अथवा अदूरदर्शिता अथवा चतुराई के अभाव के कारण एजेन्ट को कोई क्षति उठानी पड़ी है तो वह उस क्षति को नियोक्ता से प्राप्त कर सकता है। परन्तु यदि क्षति उस जोखिम के कारण उठानी पड़ी है जिसका उसे एजेन्सी अनुबन्ध करते समय ज्ञान था तो वह क्षतिपूर्ति की माँग कर सकता है। (धारा 225)

(7) नियोक्ता द्वारा नियत समय से पहले एजेन्सी समाप्त किए जाने पर एजेन्ट अपनी क्षति की पूर्ति की माँग कर सकता है।

3.8 एजेन्टों का वर्गीकरण (Classification of Agents)

(1) **विशिष्ट एजेन्ट :** किसी विशेष कार्य को करने हेतु जब किसी व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है तो वह विशिष्ट एजेन्ट कहलाता है। यह विशेष कार्य समाप्त होते ही एजेन्ट के अधिकार भी समाप्त हो जाते हैं।

(2) **सामान्य एजेन्ट :** यह एक ऐसा एजेन्ट है जिसको एक निश्चित सीमा के अन्दर उन समस्त कार्यों को करने का अधिकार होता है जो साधारण प्रकृति के होते हैं जैसे किसी व्यापार के संचालन हेतु नियुक्त कोई व्यक्ति।

(3) **अव्यापारिक एजेन्ट :** ऐसा व्यक्ति जो नियोक्ता के लिए व्यापारिक कार्य न करता हो जैसे कानूनी एजेन्ट, अधिवक्ता आदि।

(4) व्यापारिक एजेन्ट : जो व्यक्ति व्यापारिक व्यवहारों में नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया जाता है। व्यापारिक एजेन्ट कहलाता है। व्यापारिक एजेन्ट कई तरह के हो सकते हैं जैसे आढ़तिया, दलाल, कमीशन एजेन्ट, परिशोध एजेन्ट, नीलामकर्त्ता, बैकर, अभिगोपक आदि।

4.0 सारांश (Summary)

व्यवसाय में एजेन्ट की नियुक्ति व्यवसाय के विकास करने के लिए की जाती है। वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति की ओर से किसी कार्य को करने के लिए नियुक्त किया जाता है, एजेन्ट कहलाता है। जो व्यक्ति उसे नियुक्त करता है वह नियोक्ता कहलाता है तथा इनके समय हुए अनुबन्धों को एजेन्सी का अनुबन्ध कहा जाता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति जो अनुबन्ध करने की योग्यता रखता है किसी अन्य व्यक्ति को एजेन्ट नियुक्त कर सकता है। परन्तु एजेन्ट होने के लिए व्यक्ति का अनुबन्ध करने के लिए योग्य होना आवश्यक नहीं होता। एजेन्सी की स्थापना विभिन्न विधियों जैसे स्पष्ट ठहराव द्वारा, गर्भित अधिकार द्वारा, पुष्टिकरण द्वारा, आवश्यकता द्वारा आदि है। एक एजेन्ट के अधिकार सामान्यतया नियोक्ता द्वारा अनुबन्ध के द्वारा निर्धारित कर दिए जाते हैं जिनका प्रयोग वह आवश्यकतानुसार कर सकता है। विशेष परिस्थितियों में ही वह इन अधिकारों को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। एजेन्ट के द्वारा किए गए अनुबन्धों की स्थिति सामान्यतया पूर्ण रूप से वैधानिक होती है तथा नियोक्ता उसके द्वारा किए गए समस्त अनुबन्धों को पूरा करने के लिए वैधानिक रूप से बाध्य होता है। परन्तु यदि एजेन्ट अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कोई अनुबन्ध करता है तो इसके लिए वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी भी ठहराया जा सकता है। इसी प्रकार एक एजेन्ट की लापरवाही के कारण यदि नियोक्ता को कोई हानि पहुँचती है तो वह इसके लिए नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है। अतः एक एजेन्ट को नियोक्ता के लिए परिश्रम व लगन से कार्य करना चाहिए। एक एजेन्ट के विभिन्न अधिकार भी होते हैं जिनमें मुख्यतः माल को मार्ग में रोकना, पारिश्रमिक प्राप्त करना, क्षतिपूर्ति प्राप्त करना आदि होते हैं। एजेन्ट को विभिन्न श्रेणियों में जैसे विशिष्ट एजेन्ट, सामान्य एजेन्ट, व्यापारिक एजेन्ट तथा व्यवसायिक एजेन्ट आदि में विभाजित किया जा सकता है। एजेन्सी के अनुबन्ध की समाप्ति पक्षकारों की आपसी सहमति अथवा राजनियम के लागू हो जाने पर हो जाती है।

5.0 प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यावसायिक नियमन रूपरेखा : Dr. Ashok Sharma
2. व्यावसायिक नियमन रूपरेखा : Dr. R.C. Chawla
3. व्यावसायिक नियमन रूपरेखा : Dr. S.C. Aggarwal
4. व्यापारिक सन्नियम : नौलखा
5. व्यापारिक सन्नियम : Dr. S.M. Sukhal
6. Marcantile Law : Dr. N.D. Kapoor
7. Principles of Marcantile Law : B.K. Coyd
8. Business Laws : S.K. Aggarwal

6.0 नमूने के लिए प्रश्न (Sample Questions)

1. एजेन्सी की परिभाषा दीजिए। यह किस प्रकार स्थापित होती है तथा इसकी समाप्ति किस प्रकार हो सकती है।
2. एजेन्सी किसे कहते हैं? अपने नियोक्ता के प्रति एक एजेन्ट के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की व्याख्या कीजिए।
3. एजेन्सी क्या है? एक नियोक्ता के एजेन्ट के प्रति क्या-क्या अधिकार एवं उत्तरदायित्व होते हैं?
4. एक एजेन्ट कौन हो सकता है? किन विभिन्न रीतियों से एजेन्सी की स्थापना की जा सकती है?
5. एजेन्ट क्या है? एक एजेन्ट के अधिकार क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।
6. "एक व्यक्ति जो एक एजेन्ट के माध्यम से कार्य करता है स्वयं कार्य करता है" विवेचना कीजिए।